अटके आँसू

श्रीबालशौरि रेड्डी

अटके आँसू

श्रीबालशौरि रेड्डी

दो शब्द

इस पुस्तक ('अटके आँसू') में दक्षिण-भारत की तेलुगु-भाषा की बारह चुनी हुई सुन्दर कहानियों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित है। कहानियों के अनुवादक श्रीबालशौरि रेड्डी यद्यपि तेलुगु-भाषाभाषी हैं, तथापि हिन्दी के भी सुपरिचित लेखक हैं। आपके लेख हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं। आपने अपनी भाषा के साहित्य की बहुत-सी अच्छी सामग्री हिन्दी को देने की कृपा की है। आपकी प्रसिद्ध पुस्तक 'पञ्चामृत' में तेलुगु-भाषा के पाँच प्राचीन प्रतिनिधि-कवियों का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी कुछ उत्कृष्ट रचनाओं का हिन्दी-अनुवाद-सहित संकलन है। अनुवाद की सुगमता से मूल रचना का जो भाव हृदयङ्गम होता है, वह बड़ा मधुर और हृदयग्राही है। पुस्तक पढ़ने पर उत्तर और दक्षिण-भारत के साहित्य में सांस्कृतिक एकता परिलक्षित होती है। वह पुस्तक केन्द्रीय और उत्तरप्रदेश की सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है।

प्रस्तुत पुस्तक में तेलुगु-साहित्य के यशस्वी कहानी लेखकों की जो कहानियाँ संगृहीत हैं, उनसे हिन्दी-पाठकों को दक्षिण-भारत के कथाकारों की कला-कुशलता का परिचय प्राप्त होगा। साथ ही, दक्षिण-भारत के समाज की कुछ झाँकी भी मिलेगी। कहानियों में जो वातावरण और चरित्र अंकित हैं, तथा उनमें जो मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता है, उससे हिन्दी के कहानी-लेखकों को भी प्रेरणा मिलने की सम्भावना है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य की समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि भारत की प्रमुख दक्षिणी भाषाओं के साहित्य से सुन्दर और उपयोगी सामग्री का संचय किया जाय। इसी तरह हिन्दी-साहित्य की उत्तम सामग्री का संग्रह दक्षिणी भाषाओं में भी होना चाहिए। इस पुस्तक के अनुवादक यह काम भी बड़ी सफलता के साथ कर सकने में

समर्थ हैं। इस तरह के आदान-प्रदान से उत्तर और दक्षिण की हार्दिक तथा सांस्कृतिक एकता बढ़ सकती है। आशा है कि श्रीरेड्डी महोदय और उन्हीं के समान अन्य दक्षिणी हिन्दी-लेखक राष्ट्रीय एकता बढ़ानेवाले इस कार्य का महत्त्व समझकर इस दिशा में अग्रसर होने का प्रयास करेंगे।

आवश्यकता तो इस बात की भी है कि हिन्दी-लेखक भी जिस तरह बँगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर उन भाषाओं की अनेक पुस्तकों का हिन्दी-अनुवाद कर चुके हैं, उसी तरह दक्षिणी भाषाओं को भी सीखकर उनकी अच्छी-से-अच्छी पुस्तकों को हिन्दी में अनूदित करने का प्रयत्न करें। इतना ही नहीं, हिन्दी-अनुवाद के साथ-साथ हिन्दी-साहित्य की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का भी अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में प्रामाणिक अनुवाद कर सकने की योग्यता हिन्दी-लेखकों को प्राप्त करनी चाहिए। आधुनिक युग के प्रतिभाशाली हिन्दी-लेखकों के लिए यह कोई कठिन काम नहीं है। वे यदि इस तरह की साहित्य-सेवा में दत्तचित्त होंगे, तो हिन्दी का महान् उपकार होगा और अहिन्दीभाषी भाइयों पर बड़ा हितकर प्रभाव पड़ेगा।

इस पुस्तक के प्रकाशक कला-निकेतन (पटना) ने दक्षिण-भारत के एक हिन्दी-लेखक की यह पुस्तक प्रकाशित करके प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य किया है। विश्वास है कि ऐसे काम में इस प्रतिष्ठान की दिलचस्पी आगे भी बनी रहेगी।

अन्त में, पुनः मैं श्रीरेड्डीजी के हिन्दी-प्रेम का अभिनन्दन करता हूँ और हिन्दी के उत्साही तथा मेधावी लेखक-बन्धुओं से जो पहले निवेदन कर चुका हूँ, उसकी ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट करता हूँ।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना, गणतंत्र-दिवस
शकाब्द १८८०

शिवपूजनसहाय

वक्तव्य

तेलुगु-कहानी-साहित्य परिमाण तथा उत्तमता की दृष्टि से भी देखा जाय, तो हिन्दी-साहित्य से कम समृद्ध नहीं है। बल्कि, हिन्दी से भी अधिक सम्पन्न बताना अधिक न्यायसम्मत होगा। विषय की विविधता, शैली की विशिष्टता तथा अभिव्यक्तीकरण की नई परम्पराओं से तेलुगु-कहानी परिपूर्ण है। कतिपय कहानीकारों पर अँगरेजी, बँगला का प्रभाव दिखाई देता है, फिर भी तेलुगु-कहानी में मौलिकता का अभाव नहीं है।

जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों पर कहानियाँ लिखी गई हैं। मनोवैज्ञानिक, परिवार-सम्बन्धी तथा सामाजिक कहानियाँ तो अधिक संख्या में रची गई हैं। भावात्मक, ऐतिहासिक तथा प्रगतिशील कहानियाँ भी युग के अनुरूप उपस्थित हुई हैं। आन्ध्र देश के जातीय जीवन में जिन आन्दोलनों ने अपना प्रभाव डाला, उन सबका प्रतिबिम्ब तेलुगु-साहित्य में देखा जा सकता है।

तेलुगु में हजारों की संख्या में कहानीकार हैं। उन सबकी रचनाओं का परिचय देना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है। अतः हमने इसमें केवल १२ कहानियों का चुनाव किया है। विषय और शैली की भिन्नता का हमने चयन करते समय ध्यान रखा है। मेरे इस प्रयत्न में सभी कहानीकारों ने अपना सम्पूर्ण सहयोग दिया है। अतः मैं उन सबको अपना हार्दिक धन्यवा[द दे]ता हूँ।

इस संग्रह को प्रकाश में लाने का श्रेय आदरणीय श्रीशिवयोगीजी मिश्र तथा श्रीतीर्थराजमणि त्रिपाठीजी को है, जिन्होंने मुझसे सर्वथा

अपरिचित होते हुए भी स्वयं मेरे पास आकर कहानी-संग्रह की माँग की। अतः उनके प्रति यह हृदय सदा आभारी रहेगा ही।

भाई श्रीसुन्दर रेड्डीजी ने पत्रों द्वारा बराबर मुझे प्रोत्साहन दिया कि मैं अपनी रचनाओं को पुस्तकाकार प्रकाशित करूँ। यदि उनकी प्रेरणा न होती, तो मैं इस ओर प्रवृत्त ही नहीं होता। अतः मैं यह संग्रह उन्हीं को दे रहा हूँ।

पुस्तक की उपयोगिता और उत्तमता का निर्णय करनेवाले कृपालु पाठक ही होते हैं। अतः गुण-दोषों के विवेचन का भार मैं उन्हीं पर छोड़ रहा हूँ। आशा है, हिन्दी-जगत् मेरी पूर्व रचनाओं की भाँति इस पुस्तक का भी उचित रूप से स्वागत करेगा।

अन्त में, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) के सञ्चालक, हिन्दी-साहित्य के वयोवृद्ध तपस्वी आचार्य श्री शिवपूजनसहायजी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने 'दो शब्द' से इस कहानी-संग्रह की पुस्तकीय गरिमा को सीमान्त कर दिया है।

६, सत्यनारायण स्ट्रीट
मद्रास-१७
दिनांक २६ दिसम्बर, '५८

बालशौरि रेड्डी

श्रीबालशौरि रेड्डी

विषय-सूची

अटके आँसू

कमरे में प्रवेश करते हुए पार्वती ने कहा—'हमलोग मेला देखने जा रहे हैं।' पत्रिका से ध्यान हटाकर शंकरम् ने सिर उठाया। सामने श्रीमती, नौ तथा सात वर्ष के अपने दोनों पुत्रों को देखा। साफ कपड़े पहने, अच्छी तरह बाल सँवारे, बने-ठने अपने बड़े पुत्र नरसिंहम् तथा उसी की बगल में मैले-कुचैले कपड़े पहने धूलि-धूसरित, माता-पिता की ओर कातर दृष्टि से देखनेवाले कृष्ण में कितना अन्तर है! अपने ही पुत्रों में यह अन्तर देख शंकरम् को निराशा हुई।

क्षण-भर पार्वती की ओर भेद-भरी दृष्टि से देखकर उसने कहा—'हाँ' शंकरम् की दृष्टि म जो आरोप का भाव था, उसे देख पार्वती खीझ-सी गई। उसने कृष्ण को खींचकर ले जाते हुए कहा—'जितना भी साफ रखूँ, थोड़ी ही देर में कपड़ों को मैला कर लेता है।'

स्नानागार के पीतल के बड़े बरतन में लोटे की आवाज हुई। विचार-मग्न शंकरम् चौंक उठा। कृष्ण के बदन धोते समय गिरनेवाली जल-धारा की आवाज उसी स्वर में स्वर मिलाकर उसकी रोने की ध्वनि, बाल सँवारते वक्त होनेवाली पार्वती की चूड़ियों की झनझनाहट, 'मेरा सिर दर्द कर रहा है'—कृष्ण की विनयपूर्ण आवाज शंकरम् के कानों में गूँज उठी। उसने गहरी साँस लेकर पत्रिका को फेंक दिया

और आरामकुर्सी में सिर सटाकर लेट गया। मेले में जानेवालों की पदध्वनि धीरे-धीरे अस्पष्ट होती गई। चिंतित शंकरम् की आँखें जल्दी ही झपकियाँ लेने लगीं।

मन्दिर के घण्टारवों के बीच चढ़ाये जानेवाले नारियलों की ध्वनि सुनाई दे रही थी। नर-नारियों के जनप्रवाह के शोर से कान फटे जा रहे थे। पार्वती ने नरसिंहम् को रंग-विरंगे आइने के चश्मे और कृष्ण को बंसी खरीद करके दी। उन दोनों को अपने दोनों हाथ पकड़ाये मन्दिर की ओर पार्वती आगे बढ़ी जा रही थी।

सड़क के दोनों किनारों पर लगी मिठाई की दूकानों और खिलौनों की दूकानों के पास जमी हुई भीड़ और उनका उत्साह देखने पर पार्वती को लगा कि सिवाय उसके बाकी सब लोग खुश हैं। कृष्ण के बाद से पार्वती अपने पति के प्रेम से वंचित होती जा रही थी। अस्पताल में जब उसका दूसरा प्रसव हुआ था, उसकी स्मृति मात्र से पार्वती के ओंठ फड़फड़ाने लगे। उस प्रसव के समय वह बीमार पड़ी। विषम प्रसव-पीड़ा से बेहोश होकर तीन दिन तक उसने आँखें नहीं खोली थीं। होश आने पर बगल में बच्चे को न पाकर उसका मातृ-हृदय तड़प उठा था।

पार्वती ने कमरे में देखा। खिड़की से धूप कमरे में आ रही थी। उससे उसने समझा, शाम का समय हो गया है। बड़ी आतुरता के साथ इधर-उधर घूमनेवाली लेडी डाक्टर, सामनेवाली मेज पर जलनेवाला स्टौ, और गरम पानी से साफ किये जानेवाले शल्य-चिकित्सा के औजार—देखकर पार्वती के समझने में देर न लगी कि उसका आपरेशन हुआ था। कमरे में उसका शिशु कहीं दिखाई नहीं दिया। वह समझ रही थी, उसका शिशु कहीं होशियारी के साथ रखा गया होगा। प्रसव की पीड़ा से उसकी आँखें बन्द हो गईं।

निर्मल आकाश में जब इसकी आँखें खुलीं, तो देखा एक शिशु की चिल्लाहट से उसका हृदय उछल पड़ा। दूसरे ही क्षण उसका मन सन्देह में पड़ गया। फिर भी उसने साहस बटोरकर अपने शिशु का पता पाने का निश्चय किया, परन्तु लज्जा ने उसके निश्चय पर पानी फेर दिया। कमजोरी के कारण आँखें झपकने लगीं। इतने में ही दरवाजे के पास कोई आहट हुई। पार्वती की कुशल पूछनेवाला कोई परिचित स्वर सुनाई दे रहा था। उसकी माँ की आवाज थी। वे अभी-अभी गाँव से आई थीं। उसकी विधवा बहन भी उनके साथ थी। उत्तर में नर्स का कर्कश स्वर भी सुनाई दिया।

"बस करो। बच्चा-बच्चा कहकर चिल्ला रही हो। एक ओर माता की जान आफत में है! तुम बच्चे की बात कर रहे हो? माता के प्राण सुरक्षित होने चाहिए। माता के प्राणों के सामने बच्चे को कौन पूछे? तुम लोग बरामदे में जाकर बैठ जाओ।" नर्स ने कहा। नर्स की बातों से पार्वती का सन्देह और बढ़ गया। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

× × ×

एक सप्ताह के बाद अस्पताल से पार्वती की रिहाई हुई। उसके पति और हेड नर्स आगे-आगे चल रहे थे। दाईं तरफ अस्पताल के स्नानागार के निकट हेड नर्स की गर्जन भरी आवाज सुनकर अचानक सब-के-सब रुक गये। "तुमने तो आफत मचा रखी है। बच्चों के हाथों में बँधे नम्बरों को निकालकर कहाँ खो दिया? कौन बच्चा किसका है? कैसे पहचाना जाएगा? एक साथ चार बच्चों को नहाने क्यों लाई हो? अब जाकर पहले १२ नम्बरवाले बच्चे को उठा लाओ, इन्हें सौंपना है।" वह नई नर्स सहमी हुई वार्ड के अन्दर दौड़ी-दौड़ी गई। उसका बच्चा जिन्दा है, यह जानकर पार्वती बहुत

प्रसन्न हुई। पल भर में नई नर्स ने आकर कहा कि १२ नम्बरवाला बच्चा इन्हीं में है। गहरी साँस लेकर हेड नर्स ने कड़कड़ाते स्वर में कहा—'इन चारों बालकों में से १२ नम्बरवाले बच्चे को निकालकर इन्हें दो।' इससे उसे तृप्ति नहीं हुई। 'बड़े डाक्टर से कहूँगा' यह धमकी देते हुए हेड नर्स वहाँ से चली गई।

१२ नम्बरवाले बच्चे की खोज में नई नर्स लग गई। एक बच्चे के निकट पहुँचकर उसके बालों में उँगलियाँ फँसाये जाँच करनी शुरू की। उस बालक ने आँखें खोलकर शून्य दृष्टि से चारों तरफ एक बार निहारा। उसने आँखें खोलीं और बन्द कर लीं, मानों यह दिखाते हुए कि उसकी खोज से उसे कोई सरोकार नहीं। नर्स के शरीर में बिजली आ गई और वह दूसरे बालक के पास पहुँची। उसके गालों को स्पर्श करते हुए नर्स ने उस अबोध बच्चे को इधर-उधर हिलाया, बच्चे ने अर्थहीन हँसी हँसकर मुँह बन्द कर लिया। नर्स का हृदय धड़कने लगा। वह तीसरे लड़के के निकट पहुँची। वह भी हाथ-पैर मारकर चिल्ला रहा था। उसे भी छोड़ जब चौथे बालक की झुककर परीक्षा लेने लगी तो उस बालक के हाथों में नर्स की टोपी आ गई। और अबोध बच्चे ने नर्स को अपनी माँ समझकर दूध पीने की इच्छा प्रकट करते हुए ओंठों को हिलाया। उस नर्स ने चौंककर बच्चे के हाथों से अपनी टोपी छुड़ाई।

संदिग्ध मन से क्षण-भर वह चारों को देखने लगी। तुरन्त सँभलकर उसमें से एक बच्चे को हाथ में लिया और जल्दी-जल्दी हेड नर्स के पास पहुँचकर कहा—'यही बच्चा उन लोगों का है।' नर्स के मुँह पर जो सन्देह और अविश्वास था, पार्वती ने ताड़ लिया। परन्तु बच्चे को लेने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया। नयी नर्स जोर से चिल्लाने लगी—'यही बालक तुम लोगों का है।' यह आवाज

सुनकर लेडी डाक्टर वहाँ आ पहुँची। उसने गुस्से से नयी नर्स को देखा और बच्चे को उसके हाथ से छीनते हुए कहा -'जाओ, यहाँ से।' फिर चश्मों के अन्दर की बड़ी-बड़ी काली पुतलियों को घुमाते हुए गौर से बालक की चारों तरफ से परीक्षा ली और कृत्रिम हँसी के साथ कहा 'हाँ, यह बच्चा तुम्हीं लोगों का है।' सकुचाते हुए पार्वती की बड़ी बहन ने इस बालक को अपने हाथों में ले लिया।

वह बच्चा उनका है कि नहीं, यह सन्देह शंकरम् को अवश्य था, किन्तु वह इस घटना से अधिक विचलित नहीं हुआ। क्योंकि उसका यह दृढ़ विश्वास था कि उस स्थिति में अपने लड़के को वह नहीं, स्वयं विधाता भी नहीं पहचान सकता। फिर चिन्ता ही क्यों करें ? लेकिन वह इस बात पर अवश्य चकित हुआ था कि 'चारों बच्चों ने एक साथ मिलकर समस्या को इतना जटिल बना दिया है, कि वह कभी सुलझ ही नहीं सकती।'

उन अबोध बच्चों को देखते रहने पर शंकरम् में विशाल भावना पैदा हुई कि उसे जो शिशु मिला है, उसमें आखिर कमी ही क्या है। दैवी अंश उन चारों में समान रूप से विद्यमान है। अलावा इसके उसे जो शिशु प्राप्त हुआ है, वह उसका नहीं है, इसका सबूत ही क्या है ? इस बात को शंकरम् ने पार्वती से भी कहा।

समय गुजरता गया। कृष्ण के पैदा हुए सात वर्ष पूरे हुए। परन्तु अभी तक पार्वती में कृष्ण के प्रति पुत्र-भाव का न पैदा होना ही शंकरम् के लिए चिन्ता की बात थी। पार्वती की विवशता पर उसे दया आती थी। कृष्ण के पालन में किसी प्रकार की कमी दिखाई देती, तो शंकरम् का मन दुखने लगता। कभी-कभी वह सोचा करता था कि 'दोनों बच्चे अभागे हैं, इनके भाग्य में सुख ही कहाँ बदा है ?'

बच्चों के प्रति पार्वती जितना भी निष्पक्ष भाव रखने की कोशिश करती, तो भी कृष्ण के पालन में कोई-न-कोई कमी शंकरम् को दिखाई देती। कृष्ण को दूध पिलाते वक्त उसे जब यह शक हो जाता कि यह लड़का शायद पराया है, तब उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठता। इस बात के स्मरण-मात्र से मेले के बीच चलनेवाली पार्वती के बदन में कम्पन हो गया। धीरे-धीरे वह स्मृति पुरानी होती जा रही थी। इसी बीच में जैसे ही उसने किसी कारणवश अपना हाथ उठाया, उसके हाथ उठाने के झटके में कृष्ण छूट गया। देखते-देखते अपार जनता की भीड़ के बहाव में कृष्ण कहीं भटक गया।

'कृष्ण कहाँ है ?'—घबड़ाई हुई पार्वती ने बायाँ हाथ पकड़कर चलनेवाले नरसिंहम् से पूछा। इधर-उधर देखते हुए नरसिंहम् ने कहा——'मुझे नहीं मालूम।' उस भीड़ में वह कृष्ण को कहाँ ढूँढ़ सकती है ? नाम लेकर कई बार पार्वती ने व्यर्थ ही पुकारा। सन्ध्या के होते-होते वह थकी-माँदी घर पहुँची।

बरामदे में बैठे हुए शंकरम् ने पूछा —'कृष्ण कहाँ है ?' पार्वती ने डरते-डरते कहा '· कहीं छूट गया है।'

'आँ !' कहते हुए शंकरम् तिलमिलाता हुआ उठ बैठा। पार्वती को उसने कभी दोष नहीं दिया था। आज उससे रहा नहीं गया।

'तुम्हारा बड़ा लड़का छूट नहीं गया ?' शंकरम् ने पार्वती की ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा और कृष्ण की खोज में उसी क्षण निकल पड़ा।

× × ×

'पहचान नहीं सकूँगा क्या !' इसी साहस के साथ कृष्ण उस रोशनी में माँ और भाई का नाम लेकर ढूँढ़ता रहा। अँधेरा होते देख

कृष्ण का कलेजा धक-धक करने लगा। घर पहुँचने की आशा जाती रही। भीड़ भी घटती गई।

रोते-रोते वह सड़क के किनारेवाले मील-पत्थर (Mile Stone) के पास थोड़ी देर तक खड़ा रहा। माँ, भाई उसे छोड़ गये हैं। घर कैसे पहुँचेगा? वह घबराया हुआ था। उसे रास्ता भी नहीं मालूम था?

धीरज बाँधकर एक रास्ते पर चला जा रहा था। उसी रास्ते पर जानेवाले एक कुत्ते के बच्चे के पीछे हो लिया। वह पहचान गया था कि कुत्ते का बच्चा उसकी गली का है। थोड़ी ही देर में मेले का प्रकाश दूर हो गया। सारा मार्ग अन्धकारमय था। कुत्ते का बच्चा अब दिखाई नहीं दे रहा था। आहिस्ते-आहिस्ते पग बढ़ाते हुए बहुत दूर निकल आया। झींगुरों की ध्वनि से उसके हृदय की धड़कन तीव्रतर होती जा रही थी। अँधेरा बढ़ चला था। लम्बे-लम्बे पेड़ बड़े-बड़े भूत-जैसे लगते थे। डरावना वातावरण था।

इसी बीच में किसी विचित्र कीड़े की 'क्रिक्-क्रिक्' आवाज आने लगी। चीख मारकर कृष्ण कूद पड़ा! वह कीड़ा 'कृष्ण, कृष्ण' कहकर उसी को पुकार रहा था। इस कल्पना से उसका कलेजा धड़कने लगा। उसकी आँखें चकराने लगीं। काँपनेवाले पैरों के नीचे जमीन खिसकती हुई मालूम हुई। दो स्वर से अम्मा कहकर कृष्ण वहीं पर गिर पड़ा। सिकुड़ी हुई उँगलियों के बीच बंसी उसी तरह रखी रह गई थी।

× × ×

बुखार में दूसरे दिन कृष्ण ने अपनी आँखें खोलीं। पास ही बैठे हुए अपने माँ-बाप को देखा। जब शंकरम् उसका सिर सँवारता हुआ 'क्यों बेटा, कैसी तबीयत है?' पूछ ही रहा था कि हृदय से फूटनेवाले

असहनीय दुःख को कृष्ण रोक नहीं सका। 'पिताजी!' कहकर शंकरम् की गोद में सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगा और शंकरम् उसे समझाने-बुझाने लगा।

दिन-भर कृष्ण बेहोश पड़ा रहा। शाम को डाक्टर ने दवा दी। ज्वर की तीव्रता में उसने बकना शुरू किया।

'परवाह नहीं, कल तक ठीक हो जायगा।' ढाढ़स बँधाते हुए डाक्टर साहब दवा देकर चले गये।

दीपक की रोशनी कृष्ण की आँखों में चुभ रही थी। अतः शंकरम् ने उसे देहली के बाहर रखा। कृष्ण की अस्वस्थता से पार्वती में चिन्ता की आग-सी जलने लगी। आज तक उसमें यह लड़का अपना नहीं, पराये का लाल है, यही शंका प्रबल थी।

'कृष्ण तुम्हारा जना पुत्र नहीं, इसका क्या सबूत है?' शंकरम् की ये बातें पार्वती को खटकती नहीं थीं। लेकिन कृष्ण के बीमार पड़ने पर पार्वती का मन बदल गया था। भयानक बुखार का शिकार कृष्ण मेरा ही पुत्र होगा। यह भावना पार्वती में तीव्रतर होती गई। कृष्ण को इस विपत्ति से बचाने की मनौतियाँ करने लगी।

टेबिल पर की घड़ी की 'टिक-टिक' ध्वनि सुनाई दे रही थी। शंकरम् ने सिर उठाकर देखा, बारह बज गये थे। हवा के झोंकों से कृष्ण की बंसी खिड़की से जमीन पर गिरने की आवाज हुई। चौंककर कृष्ण चिल्ला उठा 'अम्माँ, देखो, वह कैसे चिल्ला रहा है।' पार्वती कृष्ण को अपनी गोद में लेने लगी। 'बस करो, इस बार उसका गला घोटना चाहती हो?' कर्कश स्वर से फटकारते हुए शंकरम् ने बच्चे को खींच लिया। पार्वती ने गद्गद स्वर से उत्तर दिया - 'मैं इतनी पापिनी हूँ क्या?'

शंकरम् ने अपने भरे नेत्रों से उसकी तरफ देखते हुए कहा --
'अपनी छोटी-सी शंका से तुम उस अबोध बालक से बदला ले रही हो न पार्वती ?'

पार्वती ने अपने पति के पैरों पर सिर रखते हुए कहा -

'नहीं मुझे उसपर सचमुच क्रोध नहीं है।'

"तुम्हीं को माता मानकर 'अम्माँ' कहकर पुकारनेवाले उस बालक के मातृत्व का भार लेने की उदारता तुममें नहीं है।" शंकरम् ने कहा। पार्वती फूट-फूटकर रोने लगी।

पिछली रात की भयानक घटना ने कृष्ण के मन पर प्रहार कर दिया था। रात के दो बज गये, बेहोशी में कृष्ण बड़बड़ा रहा है। 'माँ, मुझे ही बुला रही है, देखो उधर...कोई काली ' कहकर काँपनेवाले उस बालक को पार्वती के हाथ में देकर शंकरम् डाक्टर को बुलाने चला गया।

कृष्ण का शरीर ठण्डा होता जा रहा था। डाक्टर ने परीक्षा करके अविश्वास प्रकट किया। लेदर-बैग में से दवा की पुड़िया निकालकर कहा -- 'इसे इस्तेमाल करके देखिये।' तबतक सभी दवाओं का प्रयोग हो चुका था। १५ मिनिट तक उस बच्चे के प्राण छटपटाने लगे। सबेरा होने के पहले ही कृष्ण अपने माँ-बाप को छोड़कर सदा के लिए चला गया। जाँघ पर से कृष्ण के सिर को हटाकर अतिशय दुःख के आवेग में शंकरम् काँप उठा। वह पागल हो गया था !

दिशा-परिवर्त्तन करके चाँदनी दूसरी ओर की खिड़की से झाँक रही थी, मानों उसे कृष्ण के मुँह को अन्तिम बार चूमने की उत्कंठा हो। उस चाँदनी में पार्वती की कनखियों पर चमकनेवाली एक अश्रु-बिन्दु शंकरम् को दिखाई दी। उस बिन्दु का वहीं अटके रहना

कितना अनुचित है। काँपनेवाली अपनी उँगली से उस आँसू की ओर संकेत करते हुए आर्द्र स्वर से शंकरम् ने कहा "कितनी अजीब बात है ? संकोच ही क्यों ? वह लड़का और कोई नहीं।···सात वर्ष . सात वर्ष तक हमारा पुत्र होकर बड़ा हुआ . अगर तुम न गिरकर वहीं रह जाओगी तो · कृष्ण क्या समझेगा ?······"

केश बिखेरे पार्वती उन्मादिनी की तरह हँसती ही रह गई।

पागल की तरह बड़बड़ाते हुए पैरों को घसीटते हुए शंकरम् वहाँ से चला गया।

पार्वती के वह आँसू चाँदनी में उसी तरह चमकते हुए अटके ही रहे।

अन्न की चोरी

डाक्टर श्रीहरिराव ने क्लब में कहा - "अन्न की चोरी नाम सुनते ही मुझे एक बात याद आ रही है। जानते हैं, परसों रात को मेरी सास ने क्या किया? बिना किसी से कहे एक बहुत बड़ी थाली में चावल, तरकारी और पकान्न लेकर अपने बेटे के पास चली गई।" क्लब के सभी सदस्य आश्चर्य में पड़ गये।

× × ×

यद्यपि वेंकायम्मा का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहाँ उसे खाने-कपड़े की कमी न थी, पर उसके मन में नाममात्र के लिए भी शान्ति न थी। उसके पिता और चाचा में रोजाना कुत्तों की तरह झपटा-झपटी हुआ करती थी। उसकी चाची की तो बात ही क्या? वह तो चौबीसों घण्टे युद्ध के लिए सन्नद्ध रहती थी। दोनों भाइयों में बँटवारा हो गया था। कुएँ में भी आधा-आधा हिस्सा था। पर झगड़े का अन्त नहीं हुआ। उनकी बूढ़ी माँ के जरिये दोनों तरफ की बातें इधर-उधर पहुँचा करती थीं। कभी-कभी उन दोनों के सगे-सम्बन्धी या मित्र आया करते, तो उनके झगड़े और भी बढ़ जाते। दोनों में समझौता नहीं हो सका। कुएँ से कोई ज्यादा पानी भरता, तो लड़ाई छिड़ जाती। आखिर बड़ों के झगड़े छोटों तक पहुँचे। बच्चों में भी द्वेषाग्नि प्रज्वलित होने लगी। उन दोनों के बीच एक ऐसी दरार पड़

गई थी, जिसका भरना आसान नहीं था। करें तो क्या करें? यही समस्या थी!

वेंकायम्मा की शादी हुई और वह अपनी ससुराल चली गई। वहाँ उसका जीवन थोड़े दिन तक शान्ति के साथ गुजरा। पर वह राजनीतिज्ञों की राय में श्मशान-शान्ति जैसी ही थी। वेंकायम्मा का ससुर पहले गुजर चुका था, और उसकी ससुराल में सारा शासन सास का ही था। उसके विरुद्ध कोई कुछ बोल नहीं पाता था। उसके साथ किसी विषय पर बहस करने का साहस किसी में था ही नहीं। दुर्भाग्य वश घर का कोई आदमी उसके क्रोध का शिकार हो जाता, तो समझिए, उसको रात का खाना नहीं दिया जाता था। यदि वह अपनी किसी बहू को बुलाकर आदेश देती कि उसे सौ घड़े पानी भरना चाहिए, तो भरना ही होगा। भले ही पानी की जरूरत हो, या न हो। यदि वह अपने किसी पुत्र को बुलाकर कहती कि वह अपनी स्त्री को दस कोड़े लगावे, तो उसे मारना ही पड़ता। उसके सामने 'क्यों? क्या किया?' आदि सवाल पूछने की हिम्मत किसी में नहीं थी।

पहले वेंकायम्मा इन दृश्यों को देखकर अपनी आँखों और कानों पर विश्वास नहीं कर सकी। वह उन घटनाओं को एक खेल और अपने को एक प्रेक्षक मात्र समझती रही। किसी कारणवश उसकी सास ने जब उससे स घड़े पानी भरने को कहा, तो पानी भरते-भरते उसके हाथों में छाले पड़ गये और वह पानी न भर सकी, तो उसने साफ कह दिया कि उससे और घड़े नहीं भरे जायेंगे। इस पर उसे अपने पति के हाथों से दस कोड़े खाने पड़े थे। तब से उसमें परिवर्त्तन हुआ और वह धीरे-धीरे वहाँ की परिस्थिति को समझने लगी।

यथार्थ होने मात्र से कोई बात स्वाभाविक तो नहीं हो जाती। उसकी सास का बर्ताव और बाकी लोगों का आँख मूँदे उसकी आज्ञाओं

का पालन करना वेंकायम्मा को अस्वाभाविक मालूम हुआ। शिक्षित व्यक्ति भी उस दुष्टा की बातों का पालन क्यो करता है? उन्हें जीवन भर का कैद क्यों? क्या यह माता के प्रति भक्ति-भाव तो नहीं? या उसके नाम पर जमीन और जायदाद है, इस वजह से इज्जत की दृष्टि से देखते हैं?

वेंकायम्मा को यह समझते देर न लगी, चाहे उसके मायकेवाले कितना भी झगड़ा क्यों न करें, ससुरालवालों से सभी बातों में लाख गुने बेहतर हैं।

कुछ ही दिनों बाद उसकी सास का स्वर्गवास हुआ। वेंकायम्मा ने सोचा कि अब परिस्थिति बदल जायगी और उसके भी अच्छे दिन आयेंगे। परिस्थिति में परिवर्त्तन हुआ; पर उसके पतिदेव में कोई तब्दीली नहीं हुई, क्योंकि उसमें मानवता की कमी थी। मानवता के जो भी बीज उसके हृदय में थे, वे उसकी माता के व्यवहार से कभी के समूल नष्ट हो चुके थे। शायद वह अपनी माँ की आत्मा को शान्ति पहुँचाने के उद्देश्य से ही क्यों न हो, रोजाना वेंकायम्मा को बिना गलती या कारण के पीटा करता था। पहले वह अपने पति को उसकी माँ के हाथ का खिलौना मात्र समझती थी। इसलिए उनसे वह कभी नाराज नहीं हुई थी। मगर आज उसके पति के इस दुर्व्यवहार से गुस्सा ही नहीं आया, बल्कि कुछ नफरत-सी भी पैदा हुई। इसी बीच वह दो सन्तान की माँ बनी। उसको अपनी तकलीफ में अपनी सन्तान के प्रति अधिक श्रद्धा और प्रेम पैदा हुआ। जीवन के प्रति फिर से आशा जनमने लगी।

× × ×

वेंकायम्मा का पति मेहनती नहीं था। उसके खेत से कोई फसल लाकर देता, तो अपना जीवन बिताया करता। तो भी शहर के

श्रमिकों की तरह अपनी तकलीफों को भूल जाने के लिए शराब पिया करता था। काम किये विना पैसे कमाने के उसके सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए। और इस कोशिश में उसकी बची-खुची जायदाद भी खतम हुई। उसकी माता की जमीन और जायदाद लड़कियों के पीछे खर्च हो गई थी। एक कौड़ी भी नहीं बची थी।

× × ×

वेंकायम्मा के पति ने जब इस संसार से सदा के लिए छुट्टी ली, उस समय उन्हें १२ साल का लड़का रमण और आठ साल की लड़की सुभद्रा, केवल दो सन्तान थीं। वेंकायम्मा ने पति के मरने पर ऐसा अनुभव किया, मानो उसे मन की शान्ति मिल गई हो। लड़का, लड़की दोनों बुद्धिमान् हैं। दोनों पढ़ रहे हैं। आठ एकड़ की जमीन है। खेती करनेवाला किसान भी ईमानदार है। पर जिम्मेदारी ने वेंकायम्मा की शान्ति को हर लिया। रिश्तेदारों से, उसके देवरों से अकारण झगड़े होने का सदा भय बना रहता था। यों तो घर के सभी काम-काज रमण देख लेता था। पर दूसरों की मदद के बिना काम चलाना मुश्किल था। अपनी इज्जत की रक्षा करते हुए अड़ोस-पड़ोसवालों की सहानुभूति का पात्र बनकर काम चला लेता था। अगर उसके बच्चे कभी बीमार पड़ते, तो उसे सिवा भगवान् के कोई रक्षक दिखाई नहीं देता था। दुर्भाग्यवश वही कभी बीमार हो जाती, तो सोचती कि 'मैं ही मर जाऊँगी तो इन बच्चों को सँवारनेवाला कौन है? इनकी दशा क्या होगी?'

इस प्रकार की जिम्मेवारियों से वेंकायम्मा घबड़ानेवाली नहीं थी। व्यर्थ के झगड़े न होते, तो वह खुशी से स्वतंत्रतापूर्वक बड़ी जिम्मेवारियों को भी निभा लेती।

मानव के ऊपर से कर्त्तव्यों का भार कभी कम नहीं होता। सुभद्रा के विवाह की समस्या वेंकायम्मा को अधीर बना रही थी। वह अपनी निजी इच्छाओं को दबा सकती थी। पर सुभद्रा की शादी के सम्बन्ध में वह हवा में किले बनाने लगी। उसकी कामना थी—'सुभद्रा का पति सुन्दर हो, पढ़ा-लिखा हो, सच्चरित्रवाला हो, धनी हो, दहेज कम माँगनेवाले हो और शादी में ज्यादा खर्च न हो।' इनमें अन्तिम इच्छा को छोड़ सभी लक्षणों से अच्छा सम्बन्ध आया। सुभद्रा को देखने पर उनलोगों ने अपनी सम्मति दी। दुल्हेवालों ने दहेज तो माँगा नहीं। पर उन्हें दूसरे लोग तीन हजार रुपये देने को तैयार थे। रमण अपनी बहन सुभद्रा के विवाह में दहेज के तीन हजार और खर्च के मद्दे एक हजार फूँक देगा तो उसे भीख माँगनी पड़ेगी।

सुभद्रा की शादी के समय रमण की उम्र पन्द्रह साल की थी। मैट्रिक पढ़ रहा था। वेंकायम्मा ने बेटे से सलाह ली तो रमण ने कहा था 'खर्च तो होगा ही। सम्बन्ध अच्छा है। मैं तो मर्द ठहरा। अपनी जीविका किसी न किसी प्रकार चला ही लूँगा।' इस पर वेंकायम्मा ने सम्बन्ध स्थिर कर दिया। वर-पक्षवाले एक हजार एक सौ सोलह रुपये दहेज के रूप में और बरातवालों के कपड़े-लत्ते आदि के खर्च के मद्दे और एक हजार लेने को तैयार हुए।

इस शादी के निश्चित होने पर वेंकायम्मा अपने देवरों की टीका-टिप्पणी का शिकार अवश्य हुई, पर उसमें अभिमान की मात्रा अधिक थी। शादी के वास्ते आवश्यक तीन हजार रुपये अपनी जमीन गिरवी रखकर एक रुपये के ब्याज पर वेंकायम्मा ने लिये। उसका विश्वास था कि खेत की फसल से सब रुपये ब्याज-सहित जल्दी ही चुक जायेंगे। रामय्या कमायेगा ही, इस भरोसे पर उसने जमीन न बेचने का प्रण किया था।

पर वह अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर सकी। रमण ने चार एकड़ जमीन बेचकर ब्याजसहित कर्ज चुका दिया। उसने शादी भी की, किन्तु स्थायी नौकरी नहीं मिली। मासिक १५ रुपये कमाना मुश्किल हो गया।

वह उसकी गरीबी आकर्षणहीन होकर घाव पैदा कर सकनेवाली चोट-जैसी थी। दो वर्ष के अन्तर से बच्चे होते गये। खर्च बढ़ता गया। आमदनी घटती गई। घर में भोजन आदि की कमी होने लगी। गरीबी का नग्न नृत्य के सिवा उस परिवार में और था ही क्या?

गरीबी ने वेंकायम्मा को विचलित नहीं किया। सदा वह अपने पुत्र और बहू को देखकर मन ही मन मुग्ध हुआ करती थी। वह सोचा करती कि इस पीढ़ीवालों ने जीवन को ही बदल डाला है। नहीं तो रमण की पत्नी जानकी उस जमाने की बहू नहीं है। वेंकायम्मा को रमण जैसा देखता है, वैसे ही जानकी भी देखती है। आपस में दोनों पति-पत्नी मिल-जुलकर रहते हैं। रमण भी तो उसके जमाने का पति नहीं है। वह कभी अपनी स्त्री से 'तू तो औरत है, तुझे मानव-जैसा देखने की जरूरत नहीं' कभी नहीं कहता है। वेंकायम्मा कल्पनाएँ किया करती, 'आज नहीं तो आनेवाले जमाने में सभी पति अपनी पत्नियों को शायद इसी प्रकार देखेंगे। वे दिन कितने अच्छे होंगे।' किसी भी प्राणी में इस प्रकार की भावनाएँ पैदा करनेवाली शक्तियाँ अभ्युदय शक्तियाँ ही कहलायेंगी।

पर इस प्रकार की तृप्ति को घोर दरिद्रता कितने दिन तक बनाये रख सकती है। एक-एक वर्ष, महीना, सप्ताह और दिन उन्हें एक युग के समान दिखाई देने लगे। गरीबी मनुष्यों की अच्छाइयों को मान्यता नहीं देती। उन्हें मान्यता देनेवालों को चाहिए कि वे गरीबी को

आमूल नष्ट करने के लिए सन्नद्ध हों। सच्चरित्रता और संस्कारों पर जिसका प्रेम है, वे गरीबी के प्रति उपेक्षाभाव रखे, तो सम्भव है कि गरीबी सच्चरित्रता तथा संस्कारों का नाश ही करके दम लेगी।

× × ×

रमण अपनी माँ की तकलीफों को देख नहीं सका। उसने यह कहकर उसे अपनी बहन के घर भेज दिया कि हमारे साथ तुम भी तकलीफ क्यों भोग रही हो, तुम सुभद्रा के पास जाकर रहो। श्रीहरिराव के दिन मजे में कट रहे हैं। उसकी डाक्टरी जोरों पर चल रही है। हर महीने हजार या पन्द्रह सौ बैंक में जमा कर रहा है। वहाँ जाने पर तुम्हारी तबीयत अच्छी लगेगी।

रमण की सलाह पर वेंकायम्मा अपनी बेटी के पास आ गई। उसे यहाँ आने पर ऐसा अनुभव हुआ कि मानों बहुत देर तक पानी में रहकर बाहर आ गई हो। यहाँ दरिद्रता का ताण्डव नृत्य नहीं। लक्ष्मी की कृपा है। यह सब सुभद्रा के पूर्व जन्म के पुण्य का प्रभाव है। किसी भी सन्दूक को खोलकर देखो, दस-दस रुपये के नोट नजर आते हैं। आलमारी में कभी हजार रुपये से कम नहीं मिलेंगे। गरीब-जैसे दिखाई देनेवाले लोग भी डाक्टर के दर्शन करके उनसे डाँट-डपट खाकर, खरी-खोटी सुनकर पाँच या दस के नोट डाक्टर के हाथ में थमा कर जाते हुए दिखाई देते हैं। डाक्टर अपने समय को पैसों से माप रहा है। कल दस का नोट नहीं मिलेगा, इस बात का डर भी नहीं, न मिलने पर विशेष चिन्ता भी नहीं।

सुभद्रा का सारा शरीर सोने के आभूषणों से लदा हुआ है। मजे में दिन बिता रही है।

एक सप्ताह तक वेंकायम्मा अपने पुत्र को भूल-सी गई थी। पर कुछ ही दिनों में उसने अनुभव किया कि इस घर में उसका वही स्थान है, जो नौकरों को प्राप्त है। घर पर आनेवाले बड़े लोगों से वह बोल नहीं सकती थी। घर के नौकरों को वह काम नहीं दे सकती थी। जहाँ भी जावे, पति-पत्नी तैयार, उसे कोई नहीं बुलाता। सुभद्रा उससे कभी बोलती भी तो उसमें अहंकार भरा रहता था। नौकर अगर नाराज हो जाय, तो वह अपना काम छोड़कर जा सकता है, पर वह ....."

इस घर में होनेवाले बेकार खर्च को देखने पर उसे अपने बेटे की याद आई। उसकी आँखों से आँसू छलकने लगे। वह सोचने लगी कि इस प्रकार होनेवाले अनावश्यक खर्च में से आधा, एक चौथाई हिस्सा भी मिले, तो रमण का जीवन कितनी अच्छी तरह गुजर सकता है। इस प्रकार का अन्तर क्यों? उन्हें कौन समझायेंगे? वे समझेंगे ही कैसे, आदि।

वह अपने को रोक नहीं सकी। अपनी बेटी से पूछ बैठी - "तुम्हारे पास कभी कुछ पैसे बच जाते हैं, तो अपने भाई को भेज दो न?"

सुभद्रा ने इसके उत्तर में कहा था - "मुझे तो इस प्रकार के काम बुरे मालूम होते हैं। मैं अपने पति से पूछे बिना एक पैसा भी खर्च नहीं करती। भाई को चाहिए तो उन्हीं से क्यों नहीं पूछता? इसमें आपकी बेइज्जती है क्या?"

सुभद्रा में मनुष्यता की कमी नहीं; पर यहाँ बेटी के प्रति माता की ममता और गरीबों के प्रति धनिकों की लापरवाही सुभद्रा में दिखाई देता है।

× × ×

उस दिन सुभद्रा के जन्मदिन के उपलक्ष्य में डाक्टर श्रीहरिराव के घर में दावत है। बड़े-बड़े धनी, अफसर लोग आ रहे हैं। पक्वान्न बन रहे हैं। उसी दिन रमण के यहाँ से पत्र मिला। उसमें लिखा था—"जानकी तीन दिन से सख्त बीमार है। लोग डाक्टर को दिखाने की सलाह देते हैं। जरूरत ही क्या है? जिस व्यक्ति के लिए खाने को भोजन नहीं, उसे दवा ही क्यों?"

बड़ी-से-बड़ी विपत्ति भी समक्ष सहन की जा सकती है, पर परोक्ष में सहन करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव-सा मालूम होता है। इस समाचार को पढ़ वेंकायम्मा के हाथ-पैर काँपकर ठण्डे पड़ने लगे। वेंकायम्मा के घर में इस प्रकार की स्थिति पहले कई बार आ चुकी थी। इस पत्र के लिखने के बाद रमण ने किसी से कुछ रुपये उधार लेकर काम निकाला होगा, पर यह बात वेंकायम्मा को मालूम कैसे होगी?

सुभद्रा के पास जाकर वेंकायम्मा ने भाई के पत्र की सूचना दी। पर सुभद्रा मानों पृथ्वी का सारा भार ढो रही हो, इस प्रकार की उदासीनता दिखाते हुए, बोली – 'इस समय चिट्ठी-विट्ठी क्या? बाद को सावधानी से बैठकर पढ़ा जा सकता है।' यह कहकर किसी काम में लग गई।

रात के समय सभी खा चुके हैं। पत्तलों में बहुत-सा खाना छोड़ दिया गया है। पुत्र से पत्र पाने के बाद से अभी तक वेंकायम्मा ने एक घूँट पानी भी नहीं पिया। सबके भोजन समाप्त होने पर नौकर अपने-अपने घर चले गये। बारह बज चुके थे। वेंकायम्मा ने अभी तक भोजन नहीं किया और किसी ने उससे पूछा तक नहीं। वह उस आधी रात के समय रसोईघर में चली गई। वहाँ उसने देखा, और भी बहुत सामग्री बच गई है। पत्तल बिछाकर भोजन परोसकर खाने

को बैठ गई। पर उससे खाया नहीं गया। मजबूर होकर उसने दो-तीन कौर गले में डाल लिया, पर दूसरे ही क्षण कै हो गई।

वेंकायम्मा का मन किसी अज्ञात भयानक चिन्ता से व्याकुल है। उसने एक बहुत बड़ी थाली लेकर उसमें चावल, तरकारी, पक्वान्न, अँचार, चटनी आदि भरकर उसपर पत्तल ढँक दिया।

उस थाली को लेकर वह ठीक उस अर्द्धरात्रि के समय अपने पुत्र के घर चली गई।

पति-पत्नी

उस दिन साढ़े नौ बजे सरला का सबेरा हुआ। हृदय श्मशान-वाटिका-जैसा नीरव है। आँखें उड़ती जा रही हैं। शरीर का खयाल नहीं। चारपाई पर बैठी-बैठी चारों तरफ दृष्टि दौड़ाई। खिड़की से फूलों का हजूम दिखाई दे रहा है। हवा के झोंकों के मारे फूल स्त्रियों की केश-लटों की भाँति इधर-उधर हो रहे हैं। सरला के हृदय में एक अज्ञात पीड़ा ने स्थान बना लिया। उस पीड़ा का कारण ज्ञात-सा होकर भी अज्ञात ही रहा।

सरला अपनी असहाय स्थिति को वहन नहीं कर पा रही थी। आँखें मूँदकर ध्यान-मग्न हो गई। लहरों की भाँति एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा विषय उसके स्मृति-पटल पर ताजा होने लगे। रात में वह तीन बजे तक जागती रही और रोती भी रही। कल दुपहर को प्राप्त उस पत्र का स्मरण पुनः ताजा हो गया। वह पत्र! वह ...आह!

शीघ्रता के साथ वह पलंग पर से उठी। मेज पर से पत्र उठा लिया और उसे टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया। फिर धीरे से आकर चारपाई पर बैठ गई। उसे जैसे फिर रोने की इच्छा हुई। प्रयत्न भी किया, लेकिन रो न सकी। चिबुक पर हाथ रखकर सोचने लगी।

बीते उस चार साल का जीवन उठी हुई लहरों की भाँति एक साथ दिखाई देने लगा।

पहले-पहल उसने प्रसाद को एक मीटिंग में देखा था। उसके भाषण ने उसे अधिक आकृष्ट किया। भाषण का अभिप्राय यहाँ केवल भाषण ही नहीं उसका वाक्चातुर्य आत्म-विश्वास दमकनेवाले नेत्र, विशाल वक्षःस्थल सबने उसको आकृष्ट किया। फिर क्या था? वक्ता से प्रेम! पहले तो प्रसाद ने अङ्गीकार नहीं किया और उसके बाद विश्वास नहीं किया। उसने कहा—'मैं गरीब हूँ।' सरला ने उत्तर दिया—'मेरे पास काफी सम्पत्ति पड़ी है। उसका उपयोग हम दोनों जीवन-भर कर सकते हैं।' और फिर जैसे निरुत्तर और पराजित हो वक्ता ने स्वीकार कर लिया।

दोनों का विवाह अत्यन्त वैभव के साथ सम्पन्न हुआ। प्रसाद के मित्रों ने भी शादी में भाग लिया और उसे आशीर्वाद देकर चले गये, पर न जाने क्यों, प्रसाद के अधिकांश मित्र जैसे सरला को लुटेरे मालूम हुए! इस कारण उसे थोड़ी-सी व्यथा भी हुई। विवाह के बाद दो वर्ष अत्यन्त आनन्द के साथ बीत गये। प्रसाद सरला को छोड़ एक क्षण के लिए भी नहीं रह सकता था। जीवन में सरला के लिए साड़ी और चोली जैसे अत्यावश्यक वस्तुएँ हैं, वैसे ही उसके लिए प्रसाद भी आवश्यक दिखाई देने लगा। उसने भी सरला के अनुकूल ही व्यवहार किया और करता रहा।

कभी-कभी प्रसाद के नाम कुछ पत्र आते थे। उन्हें पढ़कर वह चिन्तित या व्याकुल हो जाता था। सरला पूछती—'ये सब क्या हैं?' प्रसाद जवाब देता—'यह सब बाहरी दुनिया है।' कुछ दिनों बाद तो उन पत्रों का पढ़ना भी प्रसाद ने बन्द कर दिया और फिर प्रसाद के

नाम पत्र आने भी बन्द हो गये। इस प्रकार तीन वर्ष एक चाँदनी रात, एक प्रणय-गीत, एक वन-विहार की तरह सुख-चैन से गुजर गये।

इसके बाद क्रमशः परिस्थितियाँ बदलती गईं। एक दिन प्रसाद बहुत रात गये घर आया। सरला ने कारण पूछा, तो प्रसाद का उत्तर था 'बाहरी दुनिया के कामों में देर हो ही जाती है।' यह कहकर प्रसाद अपने कमरे में चला गया और भीतर से दरवाजा बन्दकर लेट गया। तब से बराबर वह प्रतिदिन कहीं जाता और बहुत रात गये लौटता। उसके मित्र भी क्रमशः घर आने लगे। सरला का खयाल उन लोगों को शायद तनिक भी न था वे जोर-जोर-से बोलते, झगड़ते और लड़ते। विना विचारे सब जगह थूकते, कीचड़ से सने पैरों से घर में चक्कर लगाते। वह सुन्दर भवन शराब की दुकान-जैसा मालूम होने लगा। सरला ने एक दिन प्रसाद से कह ही तो दिया—'यह सब ठीक नहीं है।'

प्रसाद ने विस्मित स्वर में पूछा 'क्या?'

'आप के दोस्तों का यहाँ आना और ..'

'मैंने कब कहा था कि वे सब अच्छे होंगे।'

उनके अच्छे होने की बात नहीं, लेकिन मुझे तो उनके रंग-ढंग '

"जिन्हें खाने-भर के लिए भोजन नहीं, उनके रंग-ढंग इससे श्रेष्ठ कैसे हो सकते हैं? इसकी आशा भी हमें नहीं रखनी चाहिए।"

बस, उस दिन यही बात हुई। सबेरे उठकर देखते हैं, तो प्रसाद का पता ही नहीं। इधर-उधर ढूँढ़ा गया, लेकिन कहीं नहीं मिला वह।

एक मास बीतने के उपरान्त अकस्मात् कलकत्ता से एक पत्र आया। उसमें लिखा था 'मैंने दूसरा विवाह कर लिया है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा।' - प्रसाद

इन सबका स्मरण कर सरला क्रोध और ईर्ष्या से काँप गई। पलंग पर से उठी, दासी को पुकारा और पेटी और बिस्तर बाँधने की आज्ञा दी। उसने कलकत्ता जाने की तैयारी की। रेल में उसने अनेक नये अनुभव प्राप्त किये। उन अनुभवों से वह विचलित भी हुई। बड़ी भीड़ को देखने पर उसका एकाकीपन उसे भयंकर मालूम होने लगा। खिड़की से बाहर देखने लगी, तो शायद आँख में किरकिरी पड़ गई, सो आँख पोंछने लगी।

पाँच वर्ष के बच्चे ने जब उसका आँचल पकड़कर खींचा, तो वह मानो सुप्तावस्था से जाग गई। उस शिशु ने भोली हँसी हँस दी। उसका मातृत्व विचलित हुआ। आनन्दातिरेक में उसका शरीर प्रफुल्लित हो उठा और वह उस बच्चे को छाती से लगाकर दुलराने लगी। लेकिन वह उसे दुलरा नहीं सकी। बोलना चाहा, पर वह उससे नहीं हुआ। बच्चा रोने लगा, तो उसने उसे सांत्वना दी। पल-भर में वह अपनी माँ की गोद में बैठ खिल-खिलाकर फिर हँस रहा था। सहसा सरला का शरीर फिर काँप गया। उसे अपने पर ही अकारण क्रोध आया और प्रसाद को पाने की आशा और तृष्णा तीव्रतर हो गई। उसने अपने मन को सांत्वना दी, प्रसाद तो मेरा है। बीच में यह कौन होती है उसे मुझसे छीननेवाली! इसी समय रेल ने एक विकट-सी ध्वनि की।

कलकत्ता स्टेशन पर उतरकर सरला ने टैक्सी-ड्राइवर को प्रसाद का पता बताया। उसने अनेक गली-रास्तों में घुमा-फिराकर अन्त में उसे एक घर पर पहुँचा दिया। उस घर के दरवाजे में ताला लगा हुआ था। मकान के मालिक को बुलवाकर सरला ने प्रसाद का पता-ठिकाना पूछा। उसने बताया कि प्रसाद घर खाली करके एक गाँव में जाकर रह रहा है। गाँव का पता लेकर सरला प्रसाद की खोज में लौट पड़ी।

वह एक मजदूरों की बस्ती थी। समीप की फैक्टरी में दिन-भर काम करके ये मजदूर अपना पेट भरते हैं। बड़े प्रयास के साथ सरला उस गाँव में पहुँची। सड़क पर चलनेवाले एक बूढ़े को बुलाकर पूछा—'वे कहाँ रहते हैं ?'

बूढ़े ने आश्चर्य के साथ प्रश्न किया 'कौन ?'

नाम बताना उसके लिए लज्जा मालूम हुई, किन्तु करती क्या ? बताया — प्रसादजी।'

"कौन प्रसादजी ?"—गम्भीरतापूर्वक सोचते हुए बूढ़े ने पुनः पूछा।

सरला ने प्रसाद का वर्णन कर कुछ और समझाया। बूढ़े के नेत्र आनन्द से भर आये। उसने कहा 'ओह! बाबू साहब! हाँ, हाँ' क्यों नहीं जानता ?·· आइए।' फिर। उसने नम्र स्वर में पूछा—'आप कौन हैं ?'

सरला को कुछ नहीं सूझा। कुछ देर तक संकोच के मारे जवाब नहीं दे सकी। अन्त में कहा—'वे मेरे मित्र हैं।'

बूढ़े ने कहना प्रारम्भ किया --"वे बहुत ही अच्छे आदमी हैं। हम सब उन्हें पितृ-तुल्य देखते और मानते हैं।"

सरला को इन सब बातों में दिलचस्पी कहाँ ? उसने अपना मन्तव्य निकालने के अभिप्राय से पूछा 'उनकी पत्नी भी यहीं पर हैं ?'

"कौन ? माता जी ? हाँ, यहीं पर हैं। दोनों यहां पर कार्य कर रहे हैं। उनका बहुत ही आदर्श दाम्पत्य जीवन है।"

सरला का हृदय तेजी के साथ धड़कने लगा। बूढ़ा एक झोंपड़ी के सामने रुका। सामने की झोंपड़ी की ओर उँगली दिखाते हुए बूढ़े ने कहा —'यही है उनका निवास-स्थान।'

सरला ने आश्चर्य-भरे शब्दों में पूछा - 'कौन-सा ?'

'यही। आइए।'—कहकर बूढ़ा सरला को उस झोंपड़ी के अन्दर ले गया।

क्षण-भर सरला उस झोंपड़ी को ध्यान से देखती रही। वह झोंपड़ी टट्टियों से दो भागों में विभक्त की गई थी। एक भाग रसोई बनाने का था और दूसरा उठने-बैठने का। दूसरे भाग में दो पलंग बिछे थे। एक के कोने में एक टेबुल थी, जिस पर कुछ पुस्तकें और कागज पड़े हुए थे। एक टाइपराइटर भी था। सामने एक रस्सी बँधी थी, जिसपर कपड़े टँगे थे। बूढ़े ने सरला को वहीं पर बैठने को कहा और वहाँ से चला गया।

रस्सी पर टँगे कपड़ों को देखकर सरला को सन्तोष हुआ। वहाँ केवल एक साधारण साड़ी और चोली थी। वह सोचने लगी कि इस झोंपड़ी में कौन से अमृत-कलश हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए प्रसाद यहाँ रह रहा है। इसी समय बाहर किसी के कदमों की आहट सुनाई दी। सरला के शरीर में कम्पन पैदा होने लगा। वह चुपचाप सिर झुकाये मन मसोसकर बैठी रही। उसकी वेदना की तीव्रता जैसे अधिक होने लगी।

दरवाजा खोलकर प्रसाद ने अन्दर प्रवेश किया। सरला को देख क्षण-भर के लिए वह ठिठक गया और उसके मुँह से निकला—'ओह! आप हैं?' ये शब्द सरला के हृदय को वेधने लगे। धीरे-से जाकर प्रसाद मेज के पास बैठ गया।

सरला ने सिर उठाकर देखा। वह अपनी दृष्टि को हटा नहीं सकी। सरला को उस पर दया आई—'कैसे बदल गये हो? और कितने कमजोर हो गये हो?'

इतने में दरवाजा खोलकर एक महिला भीतर आई। उसके बाल कटे हुए थे। पैरों में बूट थे और आँखों पर चश्मा। बगल में एक

फाइल थी। शायद यही प्रसाद की दूसरी पत्नी थी। अविश्वास-भरे नेत्रों से सरला ने प्रसाद की ओर देखा। इसका भाव समझकर प्रसाद ने उस महिला का परिचय सरला को कराते हुए कहा 'यह मेरी पत्नी हेमा है।'

सरला चकित रह गई। उसका दिल तेजी के साथ धड़कने लगा। लेकिन उसे क्रोध नहीं आया। रोना भी नहीं, हँसी भी नहीं। 'यह यह' कहती वह जैसे कुछ देर तक कुछ कहने की चेष्टा करती रही और हेमा की तरफ देखती रह गई। प्रसाद ने मौन भंग करते हुए सरला को दिखाते हुए उसका परिचय हेमा से कराने का प्रयत्न किया, लेकिन उसकी समझ में नहीं आया कि कैसे परिचय कराया जाय? कुछ देर तक वह संकोच में रहा, फिर कहा--'यह मेरी पहली पत्नी सरला है।'

यदि सरला को मालूम होता कि परिचय का परिणाम ऐसा होगा, तो वह आत्महत्या ही कर लेती! उसमें हिन्दू-पातिव्रत्य के लक्षण अधिक मात्रा में थे, लेकिन इस समय उसे कोई दुःख नहीं हुआ। दुःख क्यों नहीं हुआ, यह स्वयं उसे भी मालूम नहीं। एक दूसरी महिला को सामने लाकर मेरी पत्नी कहकर प्रसाद के कहते वह कैसे सहन कर सकी, उसे भी स्वयं नहीं मालूम। वह उसी प्रकार आँखें फाड़े उन दोनों को देखती रह गई।

पर हेमा में कोई परिवर्त्तन नहीं आया। वह एक सहेली की भाँति ही उसके सामने पेश आई। बोली—'बैठिए। थकी मालूम होती हैं। चाय लाती हूँ।' कहकर हेमा अन्दर गई और चाय लाकर सरला को दी। सरला सिर झुकाये चाय पीने लगी। प्रसाद भी विना सिर उठाये कुलबुलाता रहा। हेमा उन दोनों को बच्चों की भाँति देखती खड़ी रह गई। सरला का हृदय जैसे झकझोर उठा। वह कसूरवार बच्ची की तरह

गल-सी गई ; उसकी दृष्टि में उसका यहाँ आना ही भूल थी। प्रसाद के साथ प्रेम करना इससे भी बड़ी भूल थी और इस संसार में जन्म लेना शायद सबसे बड़ी भूल थी!

'स्नान करेंगी?' हेमा ने दयार्द्रता के साथ पूछा। सरला ने नजर उठाकर उस स्थल को देखा। दो टट्टियाँ आड़ के लिए रखी गई हैं। शरीर पुलकित हो उठा। प्रसाद की तरफ देखा। वह पहले की भाँति अपने काम में मग्न था। उसने धीरे कहा—'मैं अभी स्नान नहीं करूँगी।' इसपर हेमा यह कहकर चली गई कि 'अच्छा, तो मैं जल्दी ही स्नान करके आती हूँ।'

वास्तव में वह चन्द मिनटों में ही स्नान समाप्तकर लौटी। इस बार वह सीधे प्रसाद के पास चली गई। बोली—'तुम्हारा भाषण टाइप करके भेजना है न?'

प्रसाद ने कहा—'हाँ, भेजना तो है।'

हेमा ने ड्राअर से एक कागजों का बण्डल निकालकर देखा, फिर टाइप करना प्रारम्भ कर दिया। प्रसाद उसी स्थान पर वैसे ही बैठा रहा। सरला किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो चुपचाप बैठी रही। परन्तु इस दृश्य को देखते वह वहाँ एक क्षण को भी और रहना नहीं चाहती थी। पर इस समय वह जाय भी, तो कहाँ? यह भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

कुछ देर बाद टाइप की ध्वनि बन्द हो गई। हेमा ने प्रसाद से पूछा—'मैंने सोचा था कि आप आज समाजवाद पर बोलनेवाले हैं।'

प्रसाद ने उसी मुद्रा में कहा—"फासिज्म हमारे देश के चतुर्दिक् जाल फैला रहा है। इधर जापान आसाम तक आ गया है। उधर जर्मनी तुर्की की सरहद पर पहुँच गया है। इस समय फासिज्म के विरुद्ध दल-बल सङ्गठित करना ही ज्यादा जरूरी है।"

चश्मे को ठीक करते हुए हेमा ने कहा—"किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध लड़ने के लिए भी तो एक आदर्श की जरूरत होती है। वह समाजवाद ही है।'

"हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है। वही कृषक-मजदूरों का आदर्श है। वही इन लोगों में उत्साह पैदा करता है। लेकिन फासिज्म के विरुद्ध केवल मजदूर-दल ही नहीं, आज की हमारे देश की परिस्थितियों में सभी को दलबद्ध होना चाहिए। इस समय इङ्गलैण्ड अपने देश से हिन्दुस्तान को दबाने के लिए फौजें भेजने की स्थिति में नहीं है। यदि हमें अपने देश की रक्षा करनी है, तो अपने देश में ही फौज का सङ्गठन करना होगा। अपने देश में ही उद्योगों की स्थापना कर उनकी वृद्धि करनी होगी। इस तरह उद्योगों के निर्माण से कुछ पूँजीपतियों के लिए विशेष लाभ होगा। इसलिए वे भी फासिज्म के विरुद्ध लड़ने को तैयार हो जायँगे। ऐसे वर्ग को हमें इन परिस्थितियों में डराना नहीं चाहिए। हम सबके मिल जाने पर ही फासिज्म रोका जा सकता है। किस वर्ग को कहाँ तक काम में लगाया जा सकता है, उस वर्ग से उतनी मात्रा में ही काम लेना विप्लवकारियों का प्रधान कर्त्तव्य है।"—प्रसाद ने उत्तर दिया।

हेमा ने सिर हिलाकर फिर टाइप करना शुरू कर दिया। सरला उन दोनों को देखती बैठी रही। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह कोई नई बात देख और सुन रही हो।

सन्ध्या के बाद होटल से टिफिन-कैरियर में भोजन आया और तीनों ने एक साथ भोजन किया। भोजन के उपरान्त हेमा ने एक चारपाई लाकर प्रसाद और अपनी चारपाइयों के बीच बिछाई और उसपर लेटने को सरला को मानो आदेश दिया। सरला को ऐसा करने में बड़ी लज्जा मालूम हुई। पर न मालूम क्यों, उसने स्वीकार कर

लिया। तीनों लेट गये। काफी देरतक प्रसाद और हेमा राजनीतिक समस्याओं पर चर्चा करते रहे। सरला अनुभव कर रही थी कि वह दो अग्नि-पर्वतों के बीच में लेटी हुई है! उसके हृदय में जलन पैदा हो गई। वे दोनों साम्राज्यवाद, फासिज्म, समाजवाद आदि का नाम बराबर ले रहे थे, पर यह सब सरला की समझ में बिलकुल नहीं आया।

सवेरे उठते ही फिर वे दोनों एक दूसरे भाषण की तैयारी में लग गये। हेमा के अनुरोध पर भाषण में जाना सरला ने भी स्वीकार कर लिया।

उस मीटिंग में अनेक कृषक- मजदूर प्रसाद की प्रतीक्षा में बैठे थे। प्रसाद के जाते ही उन सबने जय-जयकार और करतल-ध्वनि करके उन्हें पुष्प-मालाओं से भर दिया। उस मजदूर-वर्ग को, उनके उत्साह और उद्रेक को देख सरला में भी जैसे आत्म-विश्वास जाग्रत् हुआ। वह प्रसाद का भाषण ध्यानपूर्वक सुनती रही। लेकिन जब-जब प्रसाद के नेत्र उत्साह से चमक जाते थे, तब-तब सरला का हृदय जैसे धड़कने लगता था। मजदूर-दल प्रसाद के प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द को सुनकर ऐसे प्रफुल्लित हो उठता था, जिसे देख सरला भी आनन्दित हुए विना नहीं रह पाती थी। उनके नेत्रों की चमक, उत्साह एवं आवेश देखकर वह मुग्ध हो जाती, पर वह दुःखी भी हुई; क्योंकि इन्हीं लोगों को वह पहले लुटेरे समझती थी।

उसकी समझ में सारी बातें आ गईं। उसे मालूम हुआ कि उसने प्रसाद को कैसी-कैसी कठिनाइयों में से गुजारा। पर इस बात का स्मरण कर वह दुःखी हुई कि उसे छोड़कर प्रसाद ने हेमा के साथ क्यों विवाह किया? उसने एक गहरी साँस ली। उसकी आकांक्षाएँ-आशाएँ लहरों की भाँति टूट गईं। उनके स्थान पर अब एक याद-भर थी।

कुछ देर बाद मीटिंग समाप्त हुई। तीनों घर आये। सरला उन दोनों को पूर्ववत् कार्य करते देख नहीं पाई। हेमा के पास पहुँचकर

उसके टाइप की ओर दृष्टि डाली। हेमा ने सरला की ओर सानन्द भाव से देखा और मुस्कराई। सरला मातृदेवी की भाँति आनन्दित हुई। उसने हेमा के केशों पर हाथ फेरा और फिर प्रसाद के पास चली गई। बोली—'मैं जा रही हूँ।'

प्रसाद ने सरला की ओर ध्यानपूर्वक देखा। सरला ने सिर झुका लिया।

टाइप की ध्वनि बन्द हुई। हेमा ने कहा—'आप भी यहीं रह जाइये न।'

सरला ने दृढ़ संकल्प के साथ उत्तर दिया—'नहीं, मुझे जाना है।'

प्रसाद ने कहा—'स्टेशन एक मील की दूरी पर है। ठहरो, गाड़ी मँगवाये देता हूँ।'

'गाड़ी-वाड़ी मुझे नहीं चाहिए। मैं पैदल चल सकती हूँ।'

हेमा टाइपराइटर को छोड़ चली आई। सरला ने प्रेमपूर्वक उसको गले लगाया और फिर उससे विदा लेकर चल दी। प्रसाद भी सरला के साथ चलने लगा। दोनों स्टेशन की ओर चुपचाप चले जा रहे थे। उनको जाते देख रास्ते में किसान-मजदूर नमस्कार कर रहे थे। सामने से गुजरनेवाले लोग भक्ति एवं विनयपूर्वक हटते जा रहे थे। कुछ दूर चलने के बाद प्रसाद ने हठात् रुककर कहा—'सरला...'

सरला रुककर काँपते हुए आशा, पीड़ा एवं आश्चर्य के साथ प्रसाद के मुँह की ओर देखती रही।

प्रसाद ने कहा—"तुमसे एक बात कहनी है। निष्कारण ही मैंने तुम्हें दुःख दिया। इससे मैं भी बहुत दुःखी हुआ। मन को स्थिर बनाने तथा समन्वय करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तुम तो गृहलक्ष्मी हो, पर मेरा तो कोई गृह नहीं है। फिर लक्ष्मी को लेकर ही क्या करूँगा?"

सरला एक दीर्घ साँस लेकर विना कुछ कहे ही आगे बढ़ गई। उसी तरह दोनों स्टेशन तक चले गये। वहाँ रुककर सरला ने प्रसाद को भर-नजर देखा और कहा—"मुझे आपलोगों की दुनिया का परिचय मिल गया है। मेरे पूर्व प्रपंच का भी अभी-अभी परिचय मिला है। इसमें आपके दुःखी होने की कोई बात नहीं है। परन्तु...परन्तु..." सरला के नेत्रों से दो अश्रु-बिन्दु गिर गये। वह कहती गई—"मेरा जीवन व्यर्थ है। मेरी दुनिया में लाशों की अपेक्षा कोई और जीव वहाँ जीवित नहीं रह सकते। उस दुनिया में···उन लाशों में आपको बुलाना नहीं चाहती। आज तक आपको रोककर जो तंग किया, उन सबको भूल जाइए, क्षमा कर दीजिए।"

प्रसाद निश्चेष्ट होकर सुनता रहा। सरला ने स्वर को बदलकर अत्यन्त कठिनाई के साथ कहा—"लेकिन आपसे एक बात पूछनी है। मैं आपलोगों के कार्य में रोड़ा बनना नहीं चाहती। इसीलिए हेमा के अनुरोध करने पर भी मैंने वहाँ रहने से स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया। पर मेरी एक ही कामना है, जिसके पूरा होने से मैं अपने जन्म को धन्य समझूँगी।"

प्रसाद ने अत्यन्त शंकाशील एवं आतुरता के साथ पूछा—'वह क्या है, सरला?'

सरला ने सिर झुकाकर गद्गद स्वर से कहा—"आपलोगों को जब कभी किसी प्रकार की सहायता की जरूरत पड़े, तो वह दूसरों से लेने की अपेक्षा मुझसे ही लीजिए।" और अपनी वेदना को जैसे वह रोक नहीं सकी। प्रसाद की छाती पर सिर रखकर वह सिसकने लगी।

प्रसाद चौंक गया। उसने कभी नहीं सोचा था कि सरला इतनी सहनशीलता एवं वेदना के साथ बोलेगी। उसने भी दो अश्रु-बिन्दु गिराये।

कथावस्तु

'सुप्रसिद्ध कहानीकार श्रीतुकारामजी कथा-साहित्य पर भाषण देनेवाले हैं।' यह घोषणा करके अध्यक्ष महोदय बैठ गये।

तुकारामजी एक गिलास ठण्डा पानी पीकर उठे और 'माइक' के सामने जा खड़े हुए।

सभा में उपस्थित प्रायः सभी सदस्य मौन धारण कर भाषण सुनने को उद्विग्न हो उठे। उत्तरी दिशा में एक बच्ची ने रोने का उपक्रम किया, तो उसकी माता बच्चे को लेकर चुपचाप बाहर चली गई।

उपस्थित सज्जनों को विनयपूर्वक नमस्कार समर्पित कर कहानीकार तुकारामजी ने ऊँचे स्वर में भाषण देना प्रारम्भ किया।

"वर्त्तमान समय में प्रकाशित होनेवाली कहानियों का अत्यन्त सावधानी के साथ अध्ययन करनेवालों में मैं भी एक हूँ। यह कहते मैं गर्व का अनुभव करता हूँ कि तेलुगु-साहित्य में इस समय कहानियाँ अधिक मात्रा में प्रकाशित हो रही हैं। लेकिन इन कहानियों में विविधता और विभिन्न रुचियों का अभाव मुझे सर्वदा खटकता रहता है।

मेरी इन बातों से आपलोगों को कष्ट मालूम हो तो कृपया क्षमा करें। पर यह सत्य है कि अधिकांश कहानीकार एक ही प्रकार की

रचनाएँ कर रहे हैं। वे प्रयत्न तो कर रहे हैं, इसलिए उन्हें चाहिए कि कथा-शिल्प में नूतन मार्गों का अन्वेषण और अवलम्बन करें।

हाल ही में मैंने अपने एक मित्र से यही बात कही। उन्होंने तुरन्त मुझसे एक प्रश्न पूछा—'कथावस्तु अच्छी न मिले तो क्या करें ?'

यहीं पर हमें मन लगाकर सोचना पड़ता है। कथावस्तु चाहे कोई भी हो। अल्प परमाणु को भी आधार बनाकर उसमें से ब्रह्माण्ड को प्रस्फुटित कर सकते हैं।

'सो कैसे ? कृपया समझा दीजिए।' बीच ही में कोई पूछ बैठा। शायद वह कोई विद्यार्थी था।

प्रथम पंक्ति में बैठे हुए युवा लेखकों में कुछ लोग 'कह तो रहे हैं, जल्दी क्यों मचाते हो ?' कहते उसकी ओर घूरकर देखने लगे।

तुकारामजी ने खाँसते हुए पूछा—'ठण्डा पानी चाहिए।' गिलास-भर पानी पीकर रुमाल से मुँह पोंछते·····

''कथावस्तु कोई भी चीज हो सकती है। 'पानी' भी कथावस्तु हो सकता है। उस दिन का समाचार अभी मुझे स्मरण आ रहा है।

मेरे वयस्क तथा विवाह के योग्य होने का समाचार मुझे तबतक नहीं मालूम था कि जबतक मेरे घरवालों ने मुझे सावधान नहीं किया। (तालियाँ बजाते हैं) चार-पाँच वर्ष तक उनलोगों की बातों पर ध्यान दिये विना ही घूमता रहा। लेकिन मेरी दाल नहीं गली। मुझे तो एक समाज-सुधारक बनने की तीव्र इच्छा थी। वर्णान्तर-विवाह करने की उत्सुकता से विवाह के प्रस्ताव को टालता गया। अन्त में अपने वर्ण में ही अपने पसन्द की लड़की से विवाह करने की स्वतन्त्रता प्राप्त की। मेरी दृष्टि में जहाँ तक अपने वर्ण और वंश की बात है,

यह एक विप्लव कहा जा सकता है; क्योंकि बड़े लोगों द्वारा निर्णीत लड़की से विवाह करनेवाले नियम का उल्लंघन हुआ है, इसलिए।

अब तक मैंने जो कुछ कहा, वह सब केवल कथावस्तु की भूमिका-मात्र है। अब मैं जो कहने जा रहा हूँ, वही सच्ची कहानी है।

तुकारामजी ने पुनः गिलास हाथ में लेकर दो घूँट पानी पिया। इस बार व्यवस्थापकों ने दो गिलास भरकर ठण्डा पानी मेज पर रखवा दिया।

"बार-बार पानी पीना मेरी एक आदत है। औसतन दिन में चालीस गिलास पानी पिया करता हूँ। यही आदत कन्या के अन्वेषण में मुझे बड़ी सहायक साबित हुई है। अनेक लड़कियों को देखने गया। जहाँ भी जाता, पहले पानी ही माँगता। उस घर में चाहे, कोई भी होते, झट अतिथियों के आने की कल्पना कर पानी लाकर देते। इस एक ही अवकाश के द्वारा मैं अपने उद्देश्यपूर्ण कार्य की परिपूर्त्ति कर लेता। उन सब घटनाओं के सम्बन्ध में अब मैं वर्णन कर बता नहीं सकता। समय भी नहीं है। इसके अतिरिक्त उन घटनाओं में से हर एक पर एक कहानी लिखने का मेरा विचार है। अनुभव-जन्य घटनाओं के चित्रण करने में एक प्रकार का सन्तोष और आत्मानन्द प्राप्त होता है। वह अत्यन्त रसपूर्ण रचना के रूप में भी परिवर्त्तित होती है। उनमें से मैं केवल एक घटना सुनाऊँगा।

मैं जिस गाँव में गया, वह अन्य सभी गाँवों की तरह ही दिखाई दे रहा था, किन्तु मुझे उस गाँव में एक विशिष्टता का ही परिचय मिला। उस गाँव को मैंने अपने बचपन में सम्भवतः दस वर्ष की उम्र में देखा था। उस समय शायद उस लड़की की अवस्था कोई

तीन साल की होगी। उस गाँव में फिर कभी नहीं गया था। आखिर कन्या की खोज में जाना पड़ा।

गाँव में पहुँचते ही मेरे मित्र ने पूछना शुरू किया 'जी, अमुक लोगों का घर कहाँ है?' उत्तर मिला कि घर के मालिक गाँव में नहीं हैं। मैंने बहुत अच्छा अवसर समझा। मेरी प्रबल इच्छा यही रही कि उस घर में कदम रखते ही वही कन्या दिखाई दे और उसी से बोलूँ।

सीधे हम उस घर के भीतर पहुँचे। बरामदे में कोई था नहीं, रसोई में किसी के उपस्थित रहने की थोड़ी-सी आहट मिल रही थी।

मेरे मित्र ने प्रश्न किया --'भीतर कौन हैं जी?'

'जी, किनको चाहते हैं?' एक मधुर स्वर सुनाई दिया।

'हम आपके भाई से मिलने आये हैं।'

'वे तो दुपहर को ही आयेंगे।' यह उत्तर भीतर से ही मिल रहा था। लेकिन वह कन्या बाहर नहीं आई।

मैंने अब अपनी आदत के अनुसार माँगा --'थोड़ा-सा पीने का पानी दीजिए।'

उस कन्या ने पानी से भरा लोटा देहली पर रखा। उसका केवल दायाँ हाथ दिखाई दिया।

मेरे मित्र ने उस लोटे को लेकर केवल दो घूँट पिया और बाकी पानी उड़ेल दिया।

इतने में पड़ोस की एक बूढ़ी वहाँ पहुँची। मेरे मित्र ने कहा --'कुछ और पानी चाहिए।'

इस बार उस लड़की ने कुछ बड़े लोटे में पानी भरकर फिर देहली पर रखा। इस बार भी उसने अपना चेहरा नहीं दिखाया। मैंने उस लोटे को अपने हाथ में लिया। उसमें लगभग तीन गिलास

पानी था। एक गिलास पानी से कुल्ला किया और बाकी दोनों गिलास पानी पी गया।

वह कन्या तब भी बाहर नहीं आई। बूढ़ी औरत मेरे मित्र से बात कर रही थी। इस बार प्रयत्न न करें, तो अपना काम पूरा न बनेगा। यह सोचकर उस लोटे को देहली के कुछ इस पार रखकर पूछा—'थोड़ा-सा पानी और दीजिए।'

शायद वह सोचेगी—'ये भी कैसे आदमी हैं? दो लोटे खाली करके फिर पानी माँगते हैं। उनका वह पेट है या तालाब?'

उस कन्या ने लोटे को अपने हाथ में लेते मेरे मित्र की ओर देखा। क्षण-भर में लौटकर लोटे को पुनः वहीं रखा।

बूढ़ी ने कहा—'क्यों री, वहाँ पर रखा, लाकर दे दो तो।'

मैं खाट पर से हिला-डुला नहीं, वह युवती भी भीतर से बाहर नहीं आई। शायद वह हमारे आगमन का कारण समझ गई होगी। 'बहुत लजाती है' कहते बूढ़ी ने लोटा लाकर मेरे हाथ में थमा दिया। मुझे ऐसा याद है कि मैंने आधे लोटे का जल पी डाला।

मैंने अपने मित्र से पूछा—'तो अब चलें।'

उसने भी स्वीकार करते सर हिलाया।

मेरे मित्र ने उठते हुए कहा—'अपने भाई से कहिएगा कि हम फिर शाम को उनसे मिलेंगे।'

उस कन्या ने भीतर से ही कहा—'हाँ, ऐसा ही कहूँगी।' दोनों बाहर आये। दस-पन्द्रह कदम आगे बढ़ आये।

मेरे रुकते देख मित्र ने टोका—'क्यों, रुक गये?'

'जोड़ी (चप्पल की जोड़ी) भूल गया हूँ।' कहते मैं वापस लौटा। पुनः मुझे इस घर में प्रवेश करते देख वह कन्या चौंककर सामने से हट गई।

'हाँ, कुछ नहीं, जोड़ी भूल गया हूँ।' कहते चप्पल पहनकर उधर देखता हूँ, तो वह गायब। शायद मेरे व्यंग्य को ताड़ गई होगी।

तुकाराम को गिलास लेकर पानी पीते देख सभा में कोलाहल मच गया। तुकाराम ने गिलास मेज पर रखकर कहना प्रारम्भ किया।

"कहानी अभी समाप्त नहीं हुई। भाग्यवश बाद को उसी कन्या से मेरा विवाह हो गया है। वधू के साथ घर लौटते समय हमारे परिवारों में एक रिवाज प्रचलित है। उसके अनुसार दूल्हे के घरवालों को दुलहिन के घर से एक लोटा गुप्त रूप से चुराकर लाना पड़ता है। मुझे बचपन से ही मालूम है कि यह आचार हमारे यहाँ प्रचलित है। मुझे तो ज्यादा पानी पीने की भी आदत है। और, उस कन्या ने प्रथम बार विवाह के पूर्व अपने हाथों से जिस लोटे में पानी दिया था, उसमें तीन गिलास पानी अटता है, इसलिए उसी लोटे की चोरी करने की मैंने अपने पक्षवालों से अभ्यर्थना की। मेरी बहन चाँदी के लोटे चुराने के पक्ष में थी। मेरी इच्छा सौ रुपये के चाँदी के लोटे की बनिस्बत तीन रुपये का सुडौल गोल लोटा ही चुराने की रही। मैं कह नहीं सकता कि मेरा उस लोटे से क्यों ऐसा प्रेम हो गया था। जिस लोटे से पानी देने के लिए वह लजा गई थी, उसी लोटे से प्रति दिन उसके हाथ से पानी पाने की मेरी आकांक्षा थी।

अन्त में हँसते हुए मेरी बहन उसी लोटे को चुराने के लिए मान गई। चुराकर पेटी में रखा भी गया था, अब एक नई समस्या पैदा हो गई। वह लोटा वधू की भाभी के यहाँ से आया था। भाभी के मायके की सम्पत्ति ननद को नियमानुसार (आचारानुसार) नहीं देनी चाहिए। इसलिए हमसे कहा गया कि उसके बदले दूसरा लोटा इससे भी बढ़िया चाँदी का ले जावें।

मुझे उनकी सलाह उचित मालूम नहीं हुई। मैंने हठ किया कि दुलहिन के साथ उस लोटे को भी हमारे यहाँ भेजना होगा। मेरे इस असभ्य हठ पर बरात में आये हुए प्रायः सभी लोग आश्चर्यचकित हुए। उस दिन के हठ का स्मरण करने से आज मुझे आश्चर्य मालूम होता है। उसका कारण तो जबरदस्त है। वह हमारे दाम्पत्य को जीवन प्रदान करनेवाला अमृत-कलश है।

अन्त में उसी प्रकार का एक लोटा तुरन्त मँगवाकर उन्हें दिया और हमें वही लोटा दिया गया।

वह लोटा आज भी मेरे घर में है। उस लोटे-भर जल रहे, बस। एक-एक घूँट पीते मैं पन्ने-के-पन्ने लिख डालता हूँ।

संक्षिप्त में कहना हो, तो सारांश यह है कि वह भी एक कथावस्तु ही है। किसी को मालूम तक नहीं कि उस लोटे के पीछे ऐसी रसमयी कहानी जुड़ी हुई है। सम्भवतः मेरे अत्यन्त निकट के रिश्तेदारों में दो-एक लोग उस कहानी से परिचित हैं।

वह लोटा ही नहीं, अपितु वैसा पात्र मुझे जहाँ भी दिखाई दे, तो मेरे नेत्रों के सामने वह पुरानी घटना प्रत्यक्ष हो जाती है। उस घटना की याद करके उस अमृत-कलश को प्रदान करनेवाले परमात्मा का आज भी अत्यन्त कृतज्ञता के साथ स्मरण किया करता हूँ।

अब तक मैंने जो कुछ कहा, वह केवल उदाहरण-मात्र है। ऐसी कथावस्तुएँ प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सैकड़ों पाई जा सकती हैं। ऐसी हालत में कथावस्तु के अकाल हो जाने का अनुभव करते सदा एक ही प्रकार की घटनाओं तथा एक ही तरह के पात्रों का चित्रण करना छोड़ नई रीति और शैलियों का अनुसरण करेंगे तथा नये मार्गों का अन्वेषण करेंगे, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ।"

तुकाराम जी का सुदीर्घ भाषण समाप्त हो गया।

सभा में उपस्थित लोगों की भीड़ के छूँट जाने के उपरान्त मैं भक्ति-भाव से उनके पास पहुँचा और विनयपूर्वक पूछा—'महाशय, यह घटना वास्तव में आपके जीवन में घटित मालूम होती है, है न ?'

उन्होंने हँसते हुए कहा—'मैं ब्रह्मचारी हूँ अभी तक।' मैं स्तब्ध हो वहाँ कितनी देर तक खड़ा रहा, मुझे स्वयं ज्ञात नहीं है।

अन्धेरे में रोशनी

स्थूलकाय व्यक्ति को देख कुछ लोग हँसते हैं, परिहास करते हैं, अपमान करते हैं, द्वेष करते हैं और हँसी भी उड़ाते हैं। लेकिन स्थूल-कायवाले व्यक्ति साधारणतः आप हँसते, दूसरों को हँसाते रहते हैं। दूसरों के अपमान करने पर भी उसे अपने लिए आनन्द का कारण ही मानते हैं। यहाँ तक कि अपमान करनेवालों का उपकार भी किया करते हैं। देखने में जैसे पूर्ण या भरपूर दिखाई देते हैं, वैसे ही उनका मन भी भरा हुआ दिखाई देता है। लेकिन जैसे सभी मोटे आदमी अपनी शकल-सूरत से सबको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाते हैं, वैसे ही मन के भी वे अच्छे नहीं हो सकते हैं। खासकर स्थूल शरीरवाली औरतें हास्य का हेतु भले ही बन जावें, पर उनका मोटापन सौन्दर्य की लियाकत बन जाता है। कई लोगों के मन में यह शंका पैदा हो सकती है कि ऐसी औरतों के कारण खर्च और मेहनत अधिक पड़ती है, पर उपकार कुछ भी नहीं होता है। साधारणतः बस पर सफर करते समय उनके द्वारा कब्जा करनेवाली जगह को देख तथा उनके सवार होनेवाले वाहन पर उनके बोझ के कारण कभी-कभी वे दूसरों की आलोचना के कारण बन जाती हैं। तो भी क्या हुआ, वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कुछ उपकारों का कारण भी होती हैं।

ऐसा अवसर कावम्मा को प्राप्त हुआ। वह खूब मोटी-ताजी औरत है। गंगा-भागीरथी-जैसी कावम्मा अपने भाई के घर पर रहते उनकी भलाई-बुराई का ध्यान रख रही है। अर्थात्, अक्षरशः मायके पर आश्रित विधवा स्त्री है।

कावम्मा की अपनी कुछ जमीन-जायदाद है। उस पर विशाल एवं स्थूलकाय आकृति। उसका भाई कामेश्वर राव, गाँव का पटवारी है। बहन के नाम से ही वह थर-थर काँपता है। उस गाँव में एक कामेश्वर राव क्या, गाँव के सभी लोग कावम्मा से डरते हैं। कावम्मा के चलते ऐसा मालूम होता है, मानों एक छोटा-सा हिमालय पैर पाकर चल रहा है। ब्राह्मण-वीथी से, बिछाव रास्ते से होकर कावम्मा जब खेत की मेड़ों पर से नाले में जाती और गीले कपड़ों से कन्धे पर गगरी लिये चलती, तब सारी भूमि धड़कती दिखाई देती। उसे गलियों से गुजरते देख क्या पुरुष और क्या स्त्रियाँ उससे बोलने में ही भय खाते। ऐसी कावम्मा के तकलीफों में फँस जाने की कल्पना तक कौन करता? वह उस दिन की वेला विशेष ही कही जा सकती है। कभी गाँव छोड़ बाहर न जानेवाली कावम्मा को एक दिन बाहर जाना ही पड़ा; उस दिन पास के गाँव में अपने भानजे की पुत्री का नाम-करणोत्सव था। उसमें भाग लेकर रात को ही वह अपने गाँव लौटना चाहती थी। लोगों ने समझाया कि रात यहीं बिताकर सबेरे जाय, लेकिन घर पर दुधार मवेशी थी। कावम्मा को छोड़ और किसी के दुहने पर भी वह दूध नहीं देती। उसका भाई उस मवेशी के पास फटके, तो वह लात मारने लगती है। इसलिए कावम्मा को रात तक घर लौटना जरूरी था। सूर्यास्त होने के पहले ही बस पर रवाना हुई। लेकिन रास्ते में घेटपाडु के हाट के पास ही देर हो गई। बीच-बीच में कई जगहों पर

बस खड़ी रही। अतिलि नामक गाँव के पास इंजिन के खराब होने से बस घण्टा-भर ठहर गई। रथ की भाँति उसे ढकेलकर चलाने में काफी समय लगा। इस बीच में चारों तरफ घना अन्धकार छा गया। कावम्मा के, गाँव की नहर के पास पहुँचते-पहुँचते आठ बज गये। यदि वह अपने गाँव के राम-मन्दिर के पास उतर जाती, तो जल्दी घर पहुँच जाती। लेकिन कावम्मा नहर के पास ही उतर कर पार करने लगी।

घना अन्धकार फैला है। आँख फाड़ने पर भी कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। गाँव के लोग भोजन समाप्त कर सोने का उपक्रम कर रहे हैं। लोगों का आना-जाना बन्द हो गया है। कहीं भी चिराग नहीं दिखाई दे रहा है। हाँ, बहुत दूर पर दो-तीन चिराग अपने धुँधले प्रकाश को फैलाने पर ऐसा दीखते हैं, मानों अभी बुझनेवाले हैं। चारों तरफ सन्नाटा फैला हुआ है। उस अन्धकार की रात्रि में कावम्मा अकेली खेत की मेड़ों पर पैदल चली जा रही है। कुछ दूर चलने पर खेत की मेड़ों पर घास बिछी-सी दिखाई दी। कावम्मा ने उस पर पैर रखा ही था कि उसमें वह धँस गई। वह साधारण औरत थी नहीं। उसके भार से वह कीचड़-भरी घास धँसती गई और कावम्मा उसमें फँस गई। पैर निकालना चाहती है, पर वह निकलता नहीं। कीचड़ और दलदल है। जोर लगाकर भी वह असमर्थ रही। वहाँ पर दरार बनाकर भर दिया गया था। अन्धेरे में कावम्मा ने उसे नहीं देखा। नक्षत्र और खद्योतों की कांति को छोड़ उस घने अन्धकार में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। वह क्षण-भर चुप रही और जोर-जोर से चिल्लाने लगी--'बचाओ, भाई, बचाओ, मर गई!' आसपास में कहीं घर न थे। दूर पर राजा की हवेली थी। वे भी कहीं अन्दर दुबके बैठे हैं। चिल्लाती रही, कोई सुने तब न? पास की झोपड़ियों में रहने-

वाले निद्रा में मग्न थे। वहाँ से भी कोई सहायता के लिए नहीं आया। कुछ देर के बाद उस मार्ग से किसी के आने की आहट हुई। ग्वाला वीरन्ना पड़ोसी गाँव से 'बुर्रकथा' (दक्षिण-भारत की कोई विशेष कथा) सुनकर आ रहा था। उसे देखकर कावम्मा ने जोर से पुकारा। ग्वाला वीरन्ना भयभीत हो भाग गया। अंधकार में सफेद साड़ी पहनी उस नारीमूर्त्ति को उसने कोई देवता समझा था। झट दौड़कर एक झोपड़ा में घुस गया। वहाँ पर लोहार ब्रह्मलिंगम् हँसिये को सान पर चढ़ा रहा है। एक छोटा लड़का ऊँघता हुआ चक्र चला रहा है। ग्वाला वीरन्ना से समाचार सुनकर ब्रह्मलिंगम् उस विचित्र को देखने निकला।

वहाँ पहुँचकर देखा कि कोई औरत चिल्ला रही है। कावम्मा ने उन मनुष्यों को देखकर उन्हें समझाया कि 'मैं भूत-प्रेत नहीं हूँ। परिवार की बहन हूँ। इस कीचड़ में धँस गई हूँ। मेरी बातों पर यकीन करो। थोड़ा हाथ का सहारा दोगे, तो मैं बाहर आ जाऊँगी।' उसकी करुण पुकार सुनकर ब्रह्मलिंगम् बाहर निकालने का उपाय सोचने लगा। यदि कहीं रथ धँस जाता है, तो उसे लोग खींचकर बाहर निकालते हैं। मनुष्य ही फँस गया तो, मनुष्य बाहर निकाल सकते हैं। ब्रह्मलिंगम् ने हाथ का सहारा दिया। पर कोई लाभ नहीं हुआ। कावम्मा उसी भाँति खड़ी रही। लोहार ब्रह्मलिंगम् बड़ा युक्तिवान् है। उसने एक कुदाली लाकर मेंड़ पर गाड़ दिया। इसी बीच धौंकियावाला लड़का छोटा-सा दीपक ले आया। उसकी रोशनी में ब्रह्मलिंगम् और वीरन्ना ने एक रस्सी कुदाली से बाँध दी और दूसरे छोर को कावम्मा के हाथ में दिया। एक दूसरी रस्सी बाँधकर दोनों ने अपनी शक्ति लगाकर खींचा आखिर बड़े प्रयत्न के बाद वह बाहर आ ही गई।

यह सब रोशनी के न होने से उपस्थित होनेवाली कठिनाई है। ब्रह्मलिंगम् ने सोचा — 'इस अन्धकार से भरे कोने में कोई पुण्यात्मा रोशनी का इन्तजाम कर दे' तो कितना अच्छा हो। हाँ, ऐसे स्थान पर एक रोशनी अवश्य चाहिए। पहले कावम्मा को इस अन्धकार से घर पहुँचाना है। इसके बाद इस पर वह भी विचार कर सकता है। ब्रह्मलिंगम् ने एक बालक के हाथ में हरीकेन दीप देकर कावम्मा को भेज दिया।

कावम्मा इस घटना से बहुत लज्जित हुई। उन लोगों के प्रति कैसे कृतज्ञता प्रकट करें, उसकी समझ में नहीं आया। चुपचाप वह घर चली गई। घर पर चलकर साथ में आये हुए लड़के के हाथ में एक आना पैसा रख दिया। वह बालक उन पैसों को लिये विना ही घर चला गया। पटवारी ने कभी नहीं सोचा था कि उसकी बहन आज इतनी देर के बाद आयगी। कावम्मा ने घर पहुँचते ही सारी घटना का परिचय देकर कहा—'गाँव में इतने बड़े लोग हैं, लेकिन लोगों के चलने-फिरनेवाले रास्ते में चिराग तक का प्रबन्ध नहीं किया। आखिर किया ही क्या?' निद्रालु आँख से पटवारी ने कहा—'इतनी रात गये चिराग की चिन्ता क्यों? सबेरे देखा जायगा।' कावम्मा ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि वह जो अपमानित हुई है, उसका भाई उस राह पर चिराग का प्रबन्ध अवश्य करायगा। स्थूल शरीर का यह परोक्ष उपकार तो है।

चिराग की कहानी इस प्रकार प्रारम्भ हुई। पुल के पास नहर की मेंड़ की उपरथ्या में चिराग का प्रबन्ध करें, या न करें, अगर करें तो कौन? कैसे चिराग का प्रबन्ध हो? इस प्रकार के असंख्य प्रश्नों के बीच यह समस्या उपस्थित हुई कि उपरथ्या में रोशनी का इन्तजाम होगा कि नहीं। बहन के अनुरोध पर पटवारी कामेश्वर राव ने चिराग के इन्तजाम का दरियाफ्त किया। लेकिन पटवारी को लगान-सम्बन्धी हिसाब-किताब

रखने, कर वसूलने, जमीन की माप, मालगुजारी सम्बन्धी झगड़े और खेतों की सरहद सम्बन्धी विवादों पर हस्तक्षेप करने का अधिकार है, परन्तु गलियों में चिरागों का प्रबन्ध करने का अधिकार नहीं है। वह पंचायत से सम्बन्धित मामला है।

उस गाँव की गलियों में चिराग जलते ही रहते हैं। बड़ी गली में, सन्तपेटा में, और रामालय के पास तीन पेट्रोमेक्स-लाइटों का पंचायत ने प्रबन्ध किया है। पंचायत दफ्तर में एक बहुत बड़ा लाइट है ही। छोटी-सी गलियों में मिट्टी के तेल के दीपक जलाये जाते हैं। लेकिन वे चिराग जितना तेल पीते हैं, उतना प्रकाश देने का नाम नहीं। यह दीर्नी पापाराव की शिकायत है। इनके अतिरिक्त कपड़े की दूकान में एक और कमीशन की दूकान में एक पेट्रोमेक्स-लाइट है। लेकिन सभी दिनों में नहीं जलते। पंचायत-बोर्डवालों की तरफ से जो दीपक रखे गये हैं, वे भी मिट्टी के तेल के अभाव में जलाये नहीं जाते। इसलिए पंचायत-बोर्ड के प्रेसिडेंट और गाँव के पटेल ने यह कहकर उन्हें ले लिया है कि पंचायत की तरफ से जलाये नहीं जायँगे, तो हम अपने घर में जला लेंगे। लेकिन कांगरेसी नेताओं और कलक्टर के आने से ये दीपक अपने-अपने स्थान पर जलते दिखाई देते हैं। कभी-कभी किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर में कथा-पुराण या किसी शुभ कार्य का प्रबन्ध हो, तो इन दीपकों की उपासना होती रहती है। कुछ भी हो, इन पंचायत-बोर्ड के दीपों में प्रकाश की मात्रा बढ़ाना एक बहुत बड़ी समस्या है।

उपरथ्या में दीप—वह भी पंचायत-बोर्ड की तरफ से प्रबन्ध करना और भी जटिल समस्या है। जो दीपक हैं, उन्हें जलाने का प्रयत्न ही नहीं होता है। यदि वैसा प्रयत्न किया भी जाय, तो वे दीप भी पंचायत-बोर्ड के सम्प्रदायों के अनुसार अक्सर असहयोग करते रहते हैं।

साधारणः स्पिरिट और बत्ती का अभाव बताकर दीपों का जलाना छोड़ देते हैं। यदि बड़े प्रयत्न के बाद जलाये भी, तो ज्योति की जगह ज्वाला और कांति के बदले शोले निकलते हैं। इन सब झंझटों से बचने के लिए दीपक बुझाकर रख देते हैं। मामूली चिरागों की बात क्या कहना। चिरागों में कीड़े-मकोड़े गिर जाते हैं, ज्वाला को निगल लेते हैं। कभी बत्ती कम हो जाती है या तेल के खतम हो जाने से बुझ जाते हैं। इसलिए ये दीपक भी प्रकाश के फैलाने में यथाशक्ति असहयोग करके निरंतर अन्धकार में रहने के पंचायती धर्मसूत्रों का पालन करते हैं। पंचायत के अफसर या इन्स्पेक्टरों के आगमन पर ये दीपक अत्यन्त विनय के साथ अपनी रोशनी फैलाते प्रतिनित्य उसी रूप में रहने का अभिनय कर शुभ अभिनन्दन प्राप्त करते हैं। लेकिन उपरथ्या में वह पुराना दीपक भी नहीं है। पंचायत-बोर्ड वहाँ पर एक दीपक रखना चाहे तो पंचायत में एक प्रस्ताव पास करना पड़ेगा। टेंडर मँगाकर उसे करना है। इन सब के बाद दीपक जलाने का प्रबन्ध करने में लगभग एक साल अवश्य लगेगा। कावम्मा को ये सब कठिनाइयाँ कहाँ मालूम? उसने अगले पर्व के समय के भीतर दीपक के प्रबन्ध करने का हठ कर रखा है।

पटवारी कामेश्वर राव अपनी शक्ति भर कोशिश कर रहे हैं। पहले पंचायत-बोर्ड के अफसर से मिला। अफसर ने बताया कि इस समय पंचायत-बोर्ड के पास पैसा नहीं है, इसलिए सम्भव नहीं है। इसलिए अन्दरूनी रूप से मुन्शी से सलाह-मशविरा लेकर बोर्ड में प्रस्ताव पास करायेंगे, तो काम मिनटों में बन जायगा। लेकिन यह काम उतना सरल नहीं। चार-पाँच सदस्यों को अपने पक्ष में करना है। प्रेसिडेंट को भी प्रभावित करना है। संक्षेप में कहना हो, तो

बहुत बड़ी मेहनत करनी होगी। इन सब तकलीफों से बचने के लिए पटवारी ने इस प्रयत्न को ही छोड़ने का निश्चय किया। लेकिन कावम्मा किस मुहूर्त्त में उस दलदल में फँस गई थी, कह नहीं सकते। तब से दीपक के प्रबन्ध करने का हठ करके बैठ गई है। उसका कहना है कि यह काम ही कौन-सा बड़ा है, पहाड़ को खोदकर चूहे के पकड़ने के समान ? चालीस-पचास रुपयों में चिराग मिल जायगा। दो बोरे धान बेचने से हो जाता है। पटवारी ने बहन के जोर देने पर फिर प्रयत्न किया। कावम्मा का कहना तो आसान है, लेकिन करना उतना आसान नहीं। चिराग का खर्च पटवारी भले ही उठावे, लेकिन पंचायत में प्रस्ताव पास कराना जरूरी है, यह मुन्शी की सलाह थी, अब पटवारी को दूसरी चाल चलनी है।

पटवारी प्रेसिडेंट से मिला। उन्होने इस प्रस्ताव को एजेंडा में जोड़कर चार मेम्बरों से उसका समर्थन करवाने की सलाह दी। साहूकार वेंकटरंगम् से भी पटवारी ने सारी बात कह दी। उसने इस ढंग से कहा कि लाठी भी नहीं टूटे और साँप भी मरे। इसमें मेरे अकेले की क्या चलती है, सब हाँ कहेंगे, तो मैं भी उस हाँ में हाँ मिलाऊँगा !

एक और मेम्बर हैं—सावरम गाँधी कहलानेवाले, चार हाथ की धोती पहननेवाले शर्मीजी। वे गांधीजी की भाँति चार हाथ की धोती पहनते हैं। आश्रम-जीवन और खद्दर का प्रचार करते हैं। दो बार कांगरेस के आन्दोलनों में जेल भी गये हैं। उनके सभी पुत्र नौकरियों में हैं। सभी लड़कियों कि शादी भी हो गई है। दामाद भी अच्छे-अच्छे ओहदों पर हैं। वे अपने निजी गाँव में एक आश्रम खोलकर हरिजनों की सेवा करते हैं। सरकार हरिजन-छात्रावास और खादी-उद्योग के लिए जो अनुदान देती है, उसका उपभोग कर रहे हैं। उनके विचारों से कोई सहमत

नहीं। इसलिए काँगरेस-कमिटियों तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों में उन्हें दखल करने नहीं देते। यहाँ तक कि उन्हें प्रवेश ही नहीं मिलता है। किसी-न-किसी तरह पंचायत-बोर्ड के सदस्य बन गये हैं। वहाँ पर भी विचित्र विवाद किया करते हैं। पटवारी ने जब उनसे उपरथ्या में चिराग के प्रबन्ध की बात कही, तो झट उन्होंने मान लिया नहर के पास रहनेवाले ईसाई ये सुदास और लुहारों के नेता गुरवय्या से भी पटवारी कामेश्वर राव मिले। उन दोनों ने हामी भरी। बड़ी दौड़-धूप के बाद ही सही, प्रस्ताव पंचायत-बोर्ड की मीटिंग में उपस्थित हुआ। उस चर्चा में सावरम गाँधी शर्मा ने प्रस्ताव के विरुद्ध भाषण दिया—"अन्धकार गाँवों का जन्मसिद्ध अधिकार है। उस अधिकार से गाँवों को वंचित कर पेट्रोमेक्स-लाइटों का इन्तजाम करना बड़ी भारी भूल होगी। विदेशी सरकार याने ब्रिटिश-सरकार ने हमें गुमराह करने के लिए जो बुरी आदतें हममें डालीं, उनमें गैस के दीपकों का जलाना एक है। आज हमने पराई दासता को दूर निकाल फेंक दिया। लेकिन उनके आचार-व्यवहारों का अमल आज भी कर रहे हैं। महात्मा गांधीजी ने हमें अहिंसा-सिद्धान्त का जो पाठ पढ़ाया है। उसके विरुद्ध पेट्रोमाक्स-लाइट के जलाने से कितने कीड़े-मकोड़े और प्राणों की आहुति होगी। इसके अतिरिक्त उस दीपक का उपयोग करनेवाले कौन हैं ? कुत्ते या बिल्लियों को छोड़ रात्रि के समय उधर मनुष्यों का आवागमन नहीं होता है। यह खर्च बेकार और अनावश्यक है। कोई दान कर रहे हैं, यह सोच कर तो हम आग की अँगीठी अपने सिर पर नहीं रख सकते हैं न ? सदस्यो, सुनिए, सोचिए, इस दीपक का और उसके प्रकाश का विरोध कीजिए। उपनिषदों में—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' कहा गया है। हमारी जाति, संस्कृति, हमारा विज्ञान यह सब अन्धकार में है, तमस् में है। अन्धकार

को चारों तरफ फैलने दीजिए। उसे और भी घना बनने दीजिए। हमें जो प्रकाश चाहिए, वह भौतिक नहीं। हमें अन्तर्दृष्टि चाहिए। चारों ओर फैले हुए अन्धकार में ही वह मानसिक ज्योति दिखाई देती है। अन्धकार में व्याप्त उस ज्ञान-ज्योति के दर्शन कीजिए। दो बार जेल की सजा भोग कर आए हुए उस काँगरेसी ग्राम सिंह के सुझावों का पंचायत-बोर्डवाले विरोध नहीं कर सके। उपरथ्या में रोशनी लगाने की बात तात्कालिक रूप से स्थगित कर दी गई। कावम्मा इससे हतोत्साह नहीं हुई। उसने अपने भाई पर ताना देना शुरू किया कि वह गाँव का पटवारी होते हुए भी यह छोटा-सा काम नहीं करा सका। पटवारी के लिए यह अपमान की बात थी। इसलिए फिर से प्रयत्न करना चाहा।

उपरथ्या में रोशनी लगाने की बात गाँव भर में फैल गई। रोशनी के न रहने से दो-तीन और दुर्घटनाएँ हुईं, इसलिए रोशनी की आवश्यकता और अधिक हुई। पहली दुर्घटना कावम्मा की थी। दूसरी दुर्घटना पंचायत-बोर्ड के मेंबर वेंकटरंगम् की पत्नी रत्तम्मा पर बीती। वह अंधकार में नहर के पास से गुजर रही थी। एक ढेले पर पैर रखा। अंधेरे में न दिखाई देने के कारण ढेले से पैर लग गया और पैर की उँगली का एक नाखून निकल गया। उससे वह १५ दिन तक परेशान थी। उसने रोशनी की आवश्यकता का अनुभव किया और अपने पति से जोर देकर कहा भी। एक बार कपड़े के दूकानदार तिम्मय्या रात के समय राजा की हवेली से लौट रहे थे कि अंधेरे में एक ढेर पर उनका पैर पड़ गया। वह गोबर का ढेर था। फिसलकर गिर पड़े और एक हफ्ते तक चल-फिर भी नहीं सके।

और एक बार हुआ क्या, रात के समय पटेल के दामाद कासुलु रेड्डी बस से उतर कर आ रहे थे कि अंधेरे में वहाँ पर लेटी हुई भैंस

पर गिर पड़े। उस भैंस के सींग चलाने से उनकी छाती में चोट आई और कई दिन तक परेशान रहे। इस तरह के अनुभव कई लोगों पर होने के कारण गाँव के प्रायः सभी असामियों ने उपरथ्या में रोशनी रखवाने का निश्चय किया। पर पंचायत-बोर्ड की बैठक में जब प्रस्ताव पेश हुआ, तब बोर्ड के दफ्तर के पास बीस-पच्चीस हरिजन उपस्थित हुए। उन लोगों ने एक प्रार्थना-पत्र दिया। उसमें बताया गया था कि रोशनी के न होने से औरतों के मल-विसर्जन के लिए वह स्थान अनुकूल है। रोशनी के आ जाने से कठिनाई होगी। पंचायत-बोर्ड ने फिर प्रस्ताव को स्थगित कर दिया।

कावम्मा के लिए यह बड़ी पराजय की बात हो गई। गाँव में उसके परिवार का चलता प्रभाव है। बड़ी साख है, पर एक रोशनी का इन्तजाम नहीं करा सके। यह व्यथा कावम्मा को सताने लगी। अपने भाई को फिर उकसाने लगी।

पटवारी ने निश्चय किया कि हवेली में जाकर बड़े राजा से मिले तो काम बन जायगा। यह सोचकर हवेली के पास गया भी, पर राजा के दर्शन नहीं हुए। रोशनी की बात सुन राजा ने फिर कभी आने का आदेश दिया। साथ-साथ यह भी कहा कि दो-तीन बार प्रस्ताव मुलतवी करने के बाद रोशनी का इन्तजाम करना अच्छा है। लेकिन उससे कई कठिनाइयाँ उपस्थित होनेवाली हैं। पटवारी की समझ में वे कठिनाइयाँ आईं। सच्ची बात उसे देर से मालूम हुई। बात यों है राजा की हवेली में उद्धारक गुन्नय्या है। वह सभी कार्यों में कुशल है। उस गाँव के गुण्डों का वह नेता है। हाल ही में उसने एक घरेलू धंधा खोल रखा है। वह भी नहर के नीचे राजा के मवेशीखाने में। यह घरेलू-धंधा दिन-प्रति-दिन उन्नति करता जा रहा है। काफी लाभ हो रहा है। वहाँ

पर रात्रि के समय उत्पन्न होनेवाले अमृत का सेवन करने के लिए छोटे-बड़े सब इकट्ठे होते रहते हैं। बड़े राजा इस बात को जानते हुए भी ऐसा अभिनय कर रहे हैं, मानों उनको मालूम ही नहीं। व्यापार चलता जा रहा है। जरूरत पड़ने पर वह अमृत पेय कभी-कभी हवेली के लिए सप्लाई होता रहता है। ऐसी दशा में उपरथ्या में रोशनी का इन्तजाम हो जाय, तो उस मवेशीखाने पर, नहीं-नहीं पानशाला पर — प्रकाशपूर्ण ज्योति पड़ती रहेगी। सारा भेद खुल जायगा। इसलिए रोशनी के इन्तजाम को बुरा बताकर मुलतवी कर दिया गया। पटवारी ने सारे रहस्य को जान लिया। और वह छोटे राजा के आश्रय में गया। बड़े और छोटे राजा भाई-भाई हैं। उन दोनों में ज्ञाति-कलह है। इस घर पर बैठनेवाला कौआ उस घर पर नहीं बैठ सकता है। दोनों में द्वेष और घृणा है। उपरथ्या में रोशनी के इन्तजाम की बात सुनकर छोटे राजा ने कहा अवश्य प्रबन्ध होना चाहिए। निश्चय हुआ कि चिराग पटवारी की बहन कावम्मा मँगवायगी और उसका तेल- र्च छोटे राजा वहन करेंगे। कुछ भी हो, कावम्मा का संकल्प पूरा हुआ। खर्च तो उनका है ही। कार्तिक में दीपक-पर्व के समय एक चिराम मँगवाकर उसका इन्तजाम और उत्सव किया गया। दीपक की कान्ति देखकर उस रास्ते से आने-जानेवाले बहुत खुश होते और कावम्मा के परोपकार-भाव की प्रशंसा करते। दीपक चाहे जैसा भी कान्तिवान् हो, निचले भाग में छाया के विना नहीं रह सकता है। इसलिए दिया तले अंधेरा कहा गया है। इससे दीपक की समस्या समाप्त नहीं हुई।

पहले बड़े राजा के प्रोत्साहन से सावरम गांधी ने पंचायत-बोर्ड की तरफ से असम्मति प्रकट की। रोशनी के इन्तजाम का घोर विरोध किया। पटेल और पटवारी को यह प्रबन्ध पसन्द था ही। इसलिए पुलिस-

विभाग तक इस विवाद को जाने नहीं दिया। पंचायत का विरोध था ही। रोशनी तो जल रही है। इधर तर्क-वितर्क एवं वाद-विवाद हो ही रहे हैं।

अंधकार में अपने काम चलानेवालों के लिए यह दीपक कंटकप्रायहै। दीपक के सामने उजड़ा हुआ एक बैरागीमठ है। वहाँ पर हमेशा भिखारी चबूतरों पर अध-भूखे-प्यासे लेटे रहते हैं। भीतर ढोंगी साधु चिलम पीते समय काटते रहते हैं। काशी अन्नपूर्णावाली बहँगी से खाना लाकर उसका सेवन करते हैं। उसके बगल के कमरे में पहले मूर्त्तियाँ थीं, अब वहाँ पर ताश के खिलाड़ी एकत्रित हैं। दिन-रात ताश का खेल चलता रहता है। इस दीपक के कारण उनके लिए भी बड़ी विपत्ति उपस्थित हो गई है। शराब तैयार करनेवाले गुन्नय्या के दल का। क्या कहना? इन सबने मिलकर क्या किया? पत्थरों से दीपक को फोड़ दिया और पहरा देनेवाले को दीपक के खम्भे से कस-कर बाँधकर भाग गये।

यह घटना पटवारी के लिए सिर काटने के समान साबित हुई। पुलिस को सूचना देकर बुलवाया भी, लेकिन क्या फायदा? कहीं शराब नहीं मिली। एक दूसरे पर दाँव चलने लगे। पटेल और पटवारी का दल एक हुआ और पंचायत-बोर्डवालों का दल एक। इन लोगों के आपस के कलह ने दीपक के इन्तजाम को नष्टकर दिया। कावम्मा को इसमें कोई ऐब दिखाई देने लगा। उसका विचार है कि फिर दीपक लाकर उस स्थान पर रखना है। पर वह नारी है, क्या करेगी? उसका भाई गाँव का पटवारी होते हुए भी कुछ नहीं कर पा रहा है। इस गाँव के लोग कैसे ईर्ष्यालु हैं। जिस कार्य के द्वारा लोगों का उपकार होता है, उसका भी विरोध करते हैं। अंधकार से रोशनी में ले जाना

चाहते हैं तो और भी घने अंधकार में जाने की इच्छा प्रकट करते हैं। इनके साथ क्या किया जाय?

कावम्मा ने सोचा कि सबके उपयोगी स्थान पर चिराग का प्रबन्ध होना चाहिए। उस चिराग के पहरे का प्रबन्ध करना चाहिए। वह पहरा देनेवाला विपक्षी दल के लिए यम के समान हो। तभी उसका प्रयोजन होगा। इस काम के लिए लुहार ब्रह्मलिंगम् ही उचित व्यक्ति है। यह सोचकर कावम्मा ने ब्रह्मलिंगम् को बुला भेजा। ब्रह्मलिंगम् का कारखाना जरा दूर हटवाकर वहाँ पर एक बड्डी* बना दिया जाय, तो कितना अच्छा होगा। लेकिन वह कार्य ब्रह्मलिंगम् द्वारा सिद्ध होगा। गाँव मे सब की जीभ बनकर व्यवहार करना होगा। किसी दल का विरोधी बनने से काम नहीं चलने का। ब्रह्मलिंगम् ने साफ बता दिया कि एक काठ की बड़ी बड्डी मैं बना दूँगा, लेकिन वहाँ पर चिराग लगाने का भार किसी दूसरे को सौंप दीजिए। पंचायतवाले इस बात की प्रतीक्षा में थे कि पंचायत-बोर्ड की सरहदों में कोई बड्डी कैसे खड़ा कर देगा, देखें। सड़क की दूसरी ओर की जगह पंचायत-बोर्ड के अधीन में नहीं है। पटवारी ने पैमाइशी पत्थर को हटवाकर उस स्थान के लिए हाईवेज-विभाग के नाम किराये का एक चिट लिखवाया। चार दिन के अन्दर बड्डी तैयार हो गई। वह नई अभिनेत्रियों के चित्रों से अलंकृत किया गया। उसमें बीड़ी, सिगरेट, चुरुट, पान, सोडे आदि बेचे जाने लगे। उसे रंग-विरंगे कागजों के फूलों से सजाया गया। ब्रह्मलिंगम् ने तरह-तरह के अलंकारों से उसे एक छोटे-से स्वर्गलोक की

---

*तेलुगु में टीन या लकड़ी से बनाई गई छोटी दूकान को बड्डी कहते हैं, जिसमें पान, सोडा, सिगरेट, मिठाई आदि बेचे जाते हैं।—अनु०

भाँति बना दिया। सब कुछ ठीक है, पर उस पान की दुकान का मालिक कौन है? दर्जी पापय्या के अधीन उसका शिष्य सुखान साहब दूकान चलाने लगा। सुखान, उसके मामा और एक सिपाही तीनों मिलकर उसकी उन्नति में मेहनत करने लगे। एक शुभ मुहूर्त्त में पटवारी कामेश्वर राव ने पंचायत-अफसर द्वारा दूकान का उद्‌घाटन कराया।

इस तरह् पंचायत-बोर्ड के सदस्यों पर बंधन लगा दिये गये। इससे पंचायत-बोर्ड उसका विरोध नहीं कर सका।

पान की दूकान में कोई एक साहब रहने लगा। आने-जानेवाली बसें वहाँ पर थोड़ी देर रुककर जाती हैं। रात के समय पेट्रोमेक्स-लाइट अखण्ड रूप से जलता रहता है। वह दुकान दीपक की शोभा के साथ हमेशा दस-पन्द्रह आदमी से भरी रहती है। उसके समीप में स्थित नहर की मेंड़ को कोई खराब करना चाहे, तो सुखान साहब ढेंलबाँस चलाकर उन्हें भगा देता है। अब उस नहर के आसपास बिलकुल सफाई दिखाई देने लगी। मवेशीखाने में जो घरेलू धंधा चल रहा था, उसे उठाना ही पड़ा। बैरागियों के मठ में ताश का खेल बन्द हो गया। सब कुछ अब ठीक चलने लगा।

एक दिन अर्धरात्रि का समय था। चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी। साहब की दूकान में दीपक नहीं था। बड्डीवाला सिपाही वहीं पर लेटा हुआ था। कुछ दूर पर लुहार अपने काम में व्यस्त था। अचानक दूकान के पीछे कोई आहट हुई। सिपाही ने उठकर देखा, बड्डी के नीचे आग सुलगाने का कोई व्यक्ति प्रयत्न कर रहा है। एक मिनट-भर में बड्डी राख होनेवाली है। साहब ने छुरी लेकर उस व्यक्ति की छाती में भोंक दिया। वह व्यक्ति चीख मारकर गिर पड़ा।

वास्तव में बड्डी में आग नहीं लगी। उस व्यक्ति के हाथ में सुलगानेवाली दवा की जो पुड़िया थी, उसे लेकर सिपाही ने कुछ दूर पर जला दिया। वह गिरा हुआ व्यक्ति रङ्गन्ना था। साहब ने पूछा — 'तुझे क्या हो गया है? किसने आग लगाने को कहा, साफ-साफ बताओ, वरना तुम्हारी हड्डी-पसली एक कर दूँगा।' रङ्गन्ना ने बताया कि गुन्नय्या ने लालच दिखाकर मुझसे यह काम कराया है। इस गवाही को लेकर पटवारी ने मुकद्दमा चलाया। दोनों दलों में मनमुटाव बढ़ता गया। एक पक्ष दीप को स्थायी रूप से जलाने का हठ करता तो, दूसरा दल दीपक जलाने का विरोध करता।

अन्धेरे में रोशनी का प्रबन्ध हो जाने से अनेक लोगों का उपकार होने के बदले लड़ाई-झगड़े उठ खड़े हुए। ऐसी स्थिति में गाँव के पटेल को एक उपाय सूझा। उसने कलक्टर को बुलाया, गाँव की दशा से उन्हें परिचित कराकर उपरथ्या में बिजली के दीपक-स्तम्भ का प्रबन्ध कराने की प्रार्थना की। उस गाँव में कम-से-कम सौ घरवाले बिजली चाहेंगे, तो बिजली का प्रबन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। बड़े राजा के दल ने बिजली का विरोध किया। पटेल ने कलक्टर और इंजिनीयर से बात कर कम-से-कम एक दीपक-स्तम्भ के प्रबन्ध कराने की अर्जी दी, उसके कुछ समर्थक हुए तो कुछ विरोधी फिर तैयार हुए।

एक बार एलेक्ट्रिक इंजिनीयर उस रास्ते से गुजर रहे थे। वहाँ पर रोशनी के न होने के कारण उनकी कार पेड़ से टकराते-टकराते बची। अन्धेरे में पुल के नीचे पेड़ों की जो झुरमुट है, वहाँ कई दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। पान की दुकान पर अचानक रोशनी जली। इस कारण से इंजिनीयर बच गये। उस धुँधले प्रकाश में कार को लौटाया।

उन्होंने उसी समय निश्चय किया कि वहाँ पर अवश्य रोशनी का प्रबन्ध कराना है। पटेल और पटवारी का उत्साह और अधिकारियों के प्रोत्साहन ने इस कार्य को सफल बनाया। उस सड़क के पास ही चीनी की फैक्टरी को जब बिजली हो गई, तब उस पुल के पास भी एक दीप-स्तम्भ गाड़ दिया गया। जनवरी महीने में ही बिजली आई। वहाँ पर नई रोशनी फैली।

देर से ही सही, अपने संकल्प के पूरा हो जाने से कावम्मा ने अखण्ड दीपक की आराधना कराई। उस दिन गहरे अन्धेरे में वह कीचड़ में धँस गई थी, इसलिए यह सब हुआ, नहीं तो बिलकुल नहीं होता भरे हुए लोगों की आकृति की भाँति उनका मन भी पूर्ण एवं भरा रहता है न ? उसने जो संकल्प किया, उसके पूरा होने तक भगीरथ-सा प्रयत्न किया। क्या यह कम था ?

●

ऋण चुकाया

सूर्यनारायण भोजन करने बैठे हैं। मीनाक्षी घी का कटोरा लेकर रसोई-घर के दरवाजे के पास खड़ी हुई है। सूर्यनारायण ने परिषेचन* करते हुए मीनाक्षी से पूछा - 'कृष्णमूर्त्ति कहाँ है?' बालक कृष्णमूर्त्ति ने पिछवाड़े के द्वार से झाँककर देखा। सूर्यनारायण ने हँसकर कहा—'आओ बेटा! खाना खालो।' कृष्णमूर्त्ति सकुचाकर खड़ा रह गया।

सूर्यनारायण—'आओ बेटा। आओ मेरे पास।'

कृष्णमूर्त्ति दरवाजे की ओर से मुँह दिखाकर हँस पड़ा।

सूर्यनारायण—'आओ बेटा! मेरी बात सुनो लाल।' (पत्नी से) 'तुम ले आओ न उसे। देखती क्या हो!'

मीनाक्षी बालक कृष्णमूर्त्ति को उठा लाई और सूर्यनारायण के पास बिठाकर चाँदी के कटोरे में उसे खाना परोसा।

सूर्यनारायण ने उस बच्चे से पूछा—'मैं खिलाऊँ?'

कृष्णमूर्त्ति—'मैं खुद खा लूँगा।'

---

* परोसी हुई पत्तल या थाली की सामग्री को भोजन से पूर्व जल से प्रोक्षित कर आचमन करना। ब्राह्मणों में यह आचार अधिक प्रचलित है।—अनु०

'तुम खुद ही खा लो' कहकर मीनाक्षी ने बालक का चुम्बन लिया।

भोजन समाप्त होने के बाद सूर्यनारायण ओसारे में बैठकर पान खाने लगे। इतने में दौड़ता हुआ बालक वहाँ आ पहुँचा। सूर्यनारायण ने पूछा 'क्यों बेटा, पान खाओगे।'

कृष्ण – 'ऊँ। जलूल। जलूल। क्यों नहीं।'

सूर्यनारायण ने सुपारी दाँतों से काटकर आधा उस बच्चे के मुख में रखा और पान पर चूना लगाते हुए पूछा--'तुम्हारा नाम क्या है?'

कृष्ण 'कित्तमूति' (कृष्णमूर्त्ति)।

सूर्य—'तुम्हारे पिता का नाम?'

कृष्ण 'वेंकतेतस्लवु (वेंकटेश्वर राव)।'

सूर्य-- तुम्हारी अम्मा का नाम?

कृष्ण 'अनतूय' (अनसूया)।

इस प्रकार सूर्यनारायणमूर्त्ति प्रति-दिन उस बालक के मुख से उसके माँ-बाप के नाम दस-बारह बार कहलाते और संतोष पाते। लेकिन दूसरे दिन के लिए पुनः वह ताजा बन जाता है।

इतने में भोजन करके वेंकटेश्वर राव भी आया और अपने लड़के को पान चबाते देख पूछा 'तुमने खाना कहाँ खाया?'

कृष्ण 'इल के घल में।'

वेंकटेश्वर राव उनके घर में कहीं खाया जाता है।

कृष्ण 'खाले से क्या।' भौंहें चढ़ाकर मुँह घुमा करके बालक ने जवाब दिया।

वेंकटेश 'माँ मारेगी तुझे।'

कृष्णा 'क्यों मालेगी। मालेगी तो फिल मालूँगा।' तीनों हँस पड़े।

वेंकटेश्वर राव और सूर्यनारायण राव दोनों मीनाक्षी-पट्टन में एक ही घर में किराये पर हैं। वेंकटेश्वर राव कलक्टर के दफ्तर में क्लर्क और सूर्यनारायण हाई स्कूल में अध्यापक हैं।

सूर्यनारायण के कोई संतान नहीं। वेंकटेश्वर राव का यही एक मात्र लड़का है। दोनों की उम्र लगभग ३० साल की है। सूर्यनारायण ८ साल से गृहस्थी चलाते हैं, उन्हें कोई संतान नहीं। इसलिए वे दोनों पति-पत्नी कृष्णमूर्त्ति को अपने बच्चे-जैसे देखते रहते हैं। कृष्णमूर्त्ति का सारा पालन-पोषण मीनाक्षी ही करती है। वह लड़का कितने शोर से क्यों न रोता हो, सूर्यनारायण के गोद में लेते ही वह चुप हो जाता है। बालक दिन-भर सूर्यनारायण के घर में ही रहता है।

बालक देखने में सुन्दर और स्वस्थ है। वह हमेशा हँसता-खेलता-कूदता दिखाई देता है। इसलिए जल्द ही वह दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करता है, अपनी बाल-लीलाओं द्वारा। माता-पिता के तो वह आँखों का तारा ही है। लेकिन इसके पिता वेंकटेश्वर राव का एक मात्र आधार नौकरी ही है। सूर्यनारायण वेंकटेश्वर राव से वेतन भी ज्यादा पाते हैं और तेनाली के पास पचीस एकड़ नदीमातृक* भूमि है। मीनाक्षी वेंकटेश्वर राव की पत्नी अनसूया से अधिक सुन्दर है। उसके पति सूर्यनारायण बी० ए० ही हैं, अब एम्० ए० की तैयारी कर रहेहैं। वेंकटेश्वर राव केवल मैट्रिक पास हैं। मीनाक्षी और सूर्यनारायण सभी दृष्टियो से संपन्न हैं, केवल कमी है तो संतान की। कृष्णमूर्त्ति उन्हें अपना ही बच्चा मालूम होता। किस जन्म-जन्मातर का संकल्प हो, पता नहीं। पर, मीनाक्षी-सूर्यनारायण उस बच्चे को दोनों के बीच लिटाकर

---

* नदीमातृक—वह जमीन, जहाँ नदी-नहर के जल से खेती-बारी होती हो।
—अनु०

उसकी तोतली बातें सुनते हुए आनन्द लूटते रहते हैं। उस बच्चे के गाल इस दम्पति के चुम्बनों से भर जाते। जब अनसूया बच्चे को सुलाने के खयाल से वहाँ पहुँचती, तभी मीनाक्षी उसे उठाकर उसकी माता को सौंपती।

कृष्णमूर्त्ति अब तीन साल का हो गया है। अब भी वह माँ का दूध पीता है। उसकी चौथी वर्षगाँठ पर सूर्यनारायण ने तीन गिन्नियों की एक सोने की माला बनवाकर उसके गले में डाल दी। मीनाक्षी ने छोटी-सी शाल तैयार कर कृष्णमूर्त्ति को उढ़ाई। साल-गिरह पर मीनाक्षी ने उस बालक को अलकृत कर कृष्ण का वेष धराया। सिर पर मोरपंख, गाल पर सुगंधित द्रव्यों का लेपन तथा बिन्दी लगाकर सूर्य-नारायण उसे बजार ले गये। बाजार में ऐसी आँखें कहीं न थीं, जो कृष्णमूर्त्ति की ओर भर नजर देखी न हों। घर पहुँचते ही लड़के का चेहरा मुरझा गया। नजर लग गई थी। दो दिन तक वह पड़ा ही रहा, उठा तक नहीं।

मीनाक्षी और सूर्यनारायण बच्चे की हालत देख बहुत दुःखी हुए। दवा-दारू हुई, जब कृष्णमूर्त्ति चंगा हुआ, तब वह अपने माँ-बाप को भूल ही गया। सूर्यनारायण ने उस बालक के लिए दो-ढाई सौ रुपये की वस्तुएँ खरीदीं। अनसूया और वेंकटेश्वर राव को यह सब देखकर इस बात का संतोष था कि उनका बच्चा दूसरों का नयन-तारा बना बढ़ रहा है।

गर्मी का मौसम आया। धूप अपना रंग दिखाने लगी। लेकिन पास ही समुद्र रहने के कारण शाम के होते-होते ठंडी हवा चलने लगती है।

मीनाक्षी कृष्णमूर्त्ति के शरीर पर चन्दन का लेपकर खस या गुलाब का इत्र लगा, आम का शरबत पिला, बिस्तर पर चमेली के फूल बिछा लड़के को लिटाती है और पंखे से झलने लगती है।

घर में बिल्ली के हमले से बचने के लिए कभी मीनाक्षी भीतर चली जाती है, तो कृष्णमूर्त्ति उस कड़ी धूप में बाहर भाग जाता है। मीनाक्षी उसे पकड़कर फिर लिटाती है और सेवा-शुश्रूषा करने लगती है।

एक दिन की शाम को पिछवाड़े में नारियल के पेड़ के नीचे बच्चे खेल रहे थे कि कहीं से भैंस दौड़ती आई। वह कृष्णमूर्त्ति को कुचलने ही वाली थी। लेकिन अनसूया बैठी-बैठी देखती ही रही। उसने उठने का नाम तक न लिया। मीनाक्षी बेतहाशा दौड़ कर गई और बच्चे को उठा लिया। वह किल-किला कर हँस पड़ा।

अनसूया ने मीनाक्षी की ओर लापरवाही से देखते हुए पूछा – 'बहन ! तुम्हारे पेट से लड़का पैदा हो जाय, तो क्या तुम फिर इतने प्रेम से मेरे बच्चे को देखोगी ? सच सच बताओ।'

मीनाक्षी ने जवाब दिया —'मुझे बच्चों की जरूरत ही क्या ? इस बच्चे को ही मुझे दो। (कृष्णमूर्त्ति से) बेटा ! तुम मेरे पास रहोगे या अपनी माँ के पास जाओगे।'

कृष्ण तुमाले पाछ ही लहूँगा।

सूर्यनारायण के स्कूल में गर्मी की छुट्टी हुई। उनका गाँव गुडिवाडा के पास है। वहाँ पर सूर्यनारायण के नारियल और आम के बगीचे हैं। वहाँ पर ठंडक रहती है। अक्सर सूर्यनारायण की गर्मी की छुट्टियाँ वहीं पर बीतती हैं। शुक्रवार को ही छुट्टी शुरू हुई। शनिवार, एतवार रहकर सोमवार को गाँव जाने का निश्चय हुआ। पर पति-पत्नी उस बालक को छोड़कर जा नहीं सके। कल पर टालते एक सप्ताह बीत गया। वेंकटेश्वर राव के लिए डाक-विभाग की

भाँति छुट्टी मिलना असंभव था। अपने गाँव जाने के लिए उसे छुट्टी भी नहीं थी।

मीनाक्षी ने अपने पतिदेव के सामने कृष्णमूर्त्ति को गाँव ले जाने का प्रस्ताव रखा। सूर्यनारायण ने शंका प्रकट की कि शायद ही वे लोग अनुमति दें। इस उधेड़बुन में चार दिन और बीत गये।

आखिर बच्चे को गाँव ले जाने का निश्चय किया। बालक कृष्ण-मूर्त्ति के माँ-बाप ने पहले स्वीकृति नहीं दी, लेकिन वे बाद को मना भी नहीं कर सके।

बच्चे से पूछने पर कि बेटा तुम हमारे साथ आओगे, वह जवाब देता—'हाँ, जलूल आऊँगा।' यदि यह कहे कि 'यहीं रहोगे?' वह कहता 'यहीं लहूँगा।'

अनसूया ने अपने लाडले को मीनाक्षी के हाथों में सौंपते-सौंपते यही कहा—'बहन! सावधानी से देखना।' वेंकटेश्वर राव ने उस दम्पति को स्टेशन पर जाकर विदा किया।

सूर्यनारायण अपनी पत्नी और कृष्णमूर्त्ति को लेकर नंदपुर पहुँचे। औरतों की जमघट उस बच्चे को देखने लगी। गाँवों में शहर में काम करनेवाले अफसरों के प्रति बड़ी आदर की भावना होती है। अध्यापक पद के प्रति उतनी गौरव की भावना भले ही न हो, पर सूर्यनारायण प्रतिष्ठित परिवार के थे और थे ग्रैजुएट। सौ रुपये से अधिक माहवार तनख्वाह पाते थे। इसलिए उनके घर पर भीड़ का लगना स्वाभाविक ही था।

बच्चे को फिर नजर लग गई। दूसरे दिन बुखार भी आया। तीसरे दिन कुछ कम हुआ, तो वह माँ की रट लगाने लगा। कुछ दिन बाद वह अपने माँ-बाप को बिलकुल भूल ही गया। लेकिन आब-हवा

के बदलने तथा बराबर नारियल का पानी पीने से पाँचवाँ दिन जुकाम हो गया। पुजारी वेंकटय्या को दिखाया गया। उसने एक गोली दी। जुकाम कम हुआ ही न था कि आम खिलाया गया। इससे बालक की तबीयत बिलकुल खराब हो गई। मीनाक्षी ने बालक को ले जाने की जल्दी की। किसी काम से वे जा नहीं सके। उस दिन की रात को कृष्णमूर्त्ति को तीव्र ज्वर हो आया। रात में वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और चिल्लाया 'मेरी अम्माँ कहाँ? बाबूजी अभी नहीं आये। ले आओ।' सवेरे माँ-बाप के पास ले जाने की बात कहकर उसे सांत्वना दी गई। सूर्यनारायण और मीनाक्षी रात-भर जागते ही रहे।

दूसरे दिन सोमवारी कादशी के दिन बालक की स्थिति और भी नाजुक हो गई। सूर्यनारायण ने वेंकटेश्वर राव को तार दिया। मीनाक्षी इधर बेचैन रही। उसकी आँखों से निरन्तर आंसू बहने लगे। वैद्य रात भर वहीं बैठकर दवा देते रहे। सूर्यनारायण की जान में जान न थी। अप्रतिष्ठा का खयाल कर वह परेशान हो गये थे।

कृष्णमूर्त्ति चन्द्रमा के डूबते तक मीनाक्षी के हाथों में ही सदा के लिए विदा हो गया। सूर्योदय भी हुआ। दस भी बज गये। लेकिन गाड़ी से वेंकटेश्वर राव नहीं आये। मीनाक्षी इधर बेहोश पड़ी रही। सूर्यनारायण गली की तरफ के चबूतरे पर शव की भाँति बैठे वेंकटेश्वर राव की प्रतीक्षा करने लगे। पर वह न आये।

दस बजे के बाद कोई गाड़ी न थी। इसलिए सूर्यनारायण के रिश्तेदारों ने सलाह दी कि अब प्रतीक्षा करने से कोई फायदा नहीं है। शाम की गाड़ी से शायद आयेंगे। यहाँ पहुँचते-पहुँचते रात हो जायगी। तबतक इस बच्चे के शव को घर में कैसे रखा जा सकता है? यह कहकर वे लोग बच्चे को ले गये। बच्चे को श्मशान-वाटिका

में ले जाते हुए देख मीनाक्षी भी जोर से दहाड़ मारकर रोती हुई गाँव के बाहर तक गई। वहाँ से उसे लोग समझा-बुझाकर वापस ले आये।

सवेरे से सूर्यनारायण चबूतरे पर बैठे-के-बैठे ही रह गये। उनका चेहरा अतिशय दुःख और अपयश के डर से मुरझा गया था। वे पागल-से दिखाई दे रहे थे। चेहरे का सारा रङ्ग उड़ गया था।

वेंकटेश्वर राव के देखते ही सूर्यनारायण जोर-से रो पड़े। घर के भीतर से मीनाक्षी रोती हुई आई और अनसूया के पैरों पर गिर पड़ी। उस समय के करुण दृश्य का कोई महाकवि भी वर्णन नहीं कर पायेंगे। वह समय प्रलय-काल-सा प्रतीत हुआ। लोगों ने आशा छोड़ दी कि अब इन दोनों दम्पति का जीवित रहना असम्भव है। उन्हें कोई भी समझा नहीं सका। सूर्यनारायण और मीनाक्षी तो वेंकटेश्वर राव और अनसूया की तरफ देख भी नहीं सकते थे। वे भय के मारे परेशान थे।

आखिर वेंकटेश्वर राव अपने दुःख और कोप के आवेश को रोक नहीं सका। रोते हुए सूर्यनारायण को दुतकारा—'मेरे बच्चे को मुझे मुँह दिखाये विना तुमने क्यों फेंक दिया? मेरे बच्चे को जलाने-वाले तुम कौन हो? अपने बच्चे को मैं अपने ही हाथों से उठा ले जाता। आह! बेटा! मेरे लाल!'

वेंकटेश्वर राव का दुःख और भी बढ़ गया। वह अपने क्रोध को रोक न सका। डाँटते हुए कहा—'दुष्ट कहीं का। तुम मेरे बच्चे के लिए काल के समान हो। मेरे बच्चे को मुझे दो। उस निर्जीव शव को ही मुझे दो। मैं ही अपने हाथों से ...' कुछ बकता जा रहा था। इधर सूर्यनारायण की आँखें डबडबा आईं। गद्गद स्वर से दोनों

हाथों को ऊपर उठाकर नमस्कार करते हुए कहा 'भाई! मैंने अपराध किया है। तुम्हारा ऋण चुकाऊँगा। अवश्य चुकाऊँगा। मुझे माफ करो। मैं क्षमा माँगता हूँ।

अनसूया ने अपने पति का मुँह अपने हाथों से ढँकते हुए कहा—'आप कैसी बात करते हैं? बच्चे की आयु वहीं तक थी। उनपर दोष लगाने से लाभ ही क्या?'

मीनाक्षी और सूर्यनारायण ने यह सब सुनते हुए अनुभव किया कि उसी समय उनकी मृत्यु क्यों न हो गई! पृथ्वी फट क्यों न गई और वे दोनों उसमें धँस क्यों नहीं गये? लेकिन ईश्वर की दी हुई आयु को घटानेवाले वे कौन होते हैं?

वेंकटेश्वर राव ने अपने अतिशय शोक में सूर्यनारायण को बुरा-भला कहा। और कहता ही रहा। पड़ोसिन ने उसे सान्त्वना देने के विचार से कहा--'बेटा! मरे हुए लड़के को लेकर क्या करोगे? उन्हें तङ्ग क्यों करते हो?' वेंकटेश्वर राव ने जवाब दिया—"क्या करूँगा? अपने हाथों से दफनाऊँगा। अपनी छाती से लगाऊँगा। उन शीतल ओठों का चुम्बन लूँगा। ये झूठ बोलते हैं। मेरा बेटा मरा नहीं है। मैं यकीन नहीं कर सकता। मुझे छुट्टी नहीं मिली समय पर। वरना, अपने बच्चे को आँखों-भर देखता। मेरे बच्चे को फेंकनेवाले ये कौन हैं? मुझे ही फेंकना है।" आदि-आदि।

सूर्यनारायण रोते ही जाते थे। मीनाक्षी शायद होश में ही न थी। वेंकटेश्वर राव और अनसूया उसी रात्रि को रवाना हुए। लोगों ने एक-दिन ठहर जाने का अनुरोध किया। संध्या के समय पति-पत्नी श्मशान-वाटिका में गये। वहाँ थोड़ी देर तक बैठे रोते रहे। वहाँ पर दो कुत्ते चक्कर काटते रहे। गाँव के पटेल ने उस दम्पति को स्टेशन

ले जाने के लिए अपने नौकर को साथ दिया। वहाँ से दो मील की दूरी पर इन्दुपल्ली स्टेशन था। दोनों स्टेशन पहुँचे। थोड़ी देर में गाड़ी भी आ गई।

सूर्यनारायण ने सोचा कि उसने कोई अपराध किया है। मीनाक्षी भी चिन्ता से व्याकुल थी। दोनों ने निद्रा और आहार छोड़ दिया। सूर्यनारायण तो एक मास तक घर से बाहर निकले तक नहीं। वे सूखकर काँटा हो गये थे। इधर मीनाक्षी के निरन्तर रोते रहने से उसकी आँखें खराब हो गईं। आँखों की बीमारी बढ़ती गई। दो महीने गुजर गये। फिर स्कूल खुले। लेकिन उस शहर में वह मुँह कैसे दिखा सकेंगे। रोते-रोते नौकरी के लिए त्याग-पत्र दिया। सूर्यनारायण ने बच्चे के सभी आभूषण इन्श्योर करके वेंकटेश्वर राव के नाम भेजा। लेकिन उसने स्वीकार नहीं किया, वापस लौटा दिया। अब मनौती की भाँति वे चीजें सूर्यनारायण की पेटी में पड़ी रहीं। इसी चिन्ता में सूर्यनारायण घुलते रहे। सिर गंजा हो गया। चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं। पहले की चमक अब नहीं रही, उसकी जगह विषाद की रेखाओं ने ले रखी थी। रति देवी और मन्मथ-जैसे आनन्द-सागर में गोता लगानेवाले मीनाक्षी और सूर्यनारायण आज कैसे हैं? मीनाक्षी का सारा सौन्दर्य नष्ट हो चुका है। और, सूर्यनारायण का सारा उत्साह मन्द पड़ गया है। पहले की भाँति उनका स्वास्थ्य भी अब ठीक नहीं है।

काल-चक्र तेजी के साथ घूमता गया है। दो वर्ष बीत गये। वेंकटेश्वर राव के यहाँ एक पुत्री पैदा हुई। पुत्र कृष्णमूर्त्ति का शोक वे शिशु की क्रीड़ाओं में भूल गये।

(२)

तीन वर्ष बीत गये। एक बार जोर का तूफान आया। सूर्यनारायण के नारियल और आम के बगीचे उखड़ गये। ठीक तरह से सिंचाई न होने के कारण आमदनी कम हो गई। सूर्यनारायण ने जिन लोगों को जर्मान दे रखी थी, वे भी ठीक तरह से कौल नहीं देते थे। इन सबसे तङ्ग आकर सूर्यनारायण ने फिर नौकरी करने का निश्चय किया। आवेदन-पत्र भेजा गया। कॉलेज में नौकरी मिली। परिवार के साथ रहने लगे। एक दिन अचानक बाजार में सूर्यनारायण की वेंकटेश्वर राव से भेंट हुई। लेकिन सूर्यनारायण सर झुकाकर खड़े रह गये। वेंकटेश्वर राव ने कुशल समाचार पूछा और अपनी पुत्री को देखने के लिए घर आने का निमन्त्रण दिया। वेंकटेश्वर राव ने अपनी पत्नी अनसूया को सारा समाचार सुनाया।

अनसूया के मन में मीनाक्षी को देखने की इच्छा हुई। घर का पता लगाकर अनसूया और वेंकटेश्वर राव सूर्यनारायण के घर पर पहुँचे। वे दोनों अब भी दुःखी दिखाई दिये। बातों से मालूम हुआ कि मीनाक्षी गर्भवती है।

अनसूया ने जाते समय मीनाक्षी से कहा—"बहन! हमारे घर के दूसरे भाग में तमिलवाले किराये पर रहते हैं। उनकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। मैं परेशान थी। अब उनकी बदली होनेवाली है। आप उसमें आ जाइए न। साथ रहेंगे तो मन बदलेगा।

मीनाक्षी अपने मायके गई। सूर्यनारायण सात-आठ महीने होटल में रहे। वेंकटेश्वर राव की बच्ची की सालगिरह पर सूर्यनारायण भोजन करने गये। भोजन समाप्त होने तक वे सर झुकाये बैठे रहे, फिर उन दोनों में गाढ़ी दोस्ती हुई। अनसूया और वेंकटेश्वर राव ने सोचा—'बच्चा तो मर गया है। आखिर शत्रुता क्यों? उन लोगों ने

जान-बूझकर तो नहीं मारा। उनका उस बच्चे पर कैसा प्रेम था। भाग्य का खेल है। कोई क्या कर सकता है? बेचारे बड़े दुःखी हैं।'

मीनाक्षी फिर सूर्यनारायण के यहाँ आई। वेंकटेश्वर राव के अनुरोध पर पहले के स्थान पर ही दोनों परिवार रहने लगे। मीनाक्षी को लड़का हुआ है। सोलहो आने कृष्णमूर्त्ति-जैसा है। उसी घर में रह रहे हैं। एक साल बीता, दूसरा वर्ष भी पूरा होने को आया।

लोगों ने समझा कि कृष्णमूर्त्ति ने ही पुनः जन्म धारण किया है। लेकिन प्रकट रूप से किसी ने यह बात नहीं कही। सूर्यनारायण के पिता का नाम कृष्णावधानुलु था। बालक का नाम भी वही रखा गया।

मीनाक्षी और सूर्यनारायण अपने पुत्र के प्रति लापरवाह से रहने लगे। बच्चा तो वैसे ही हवा में बढ़ता जा रहा था। एक दिन खेलते-खेलते वह बालक चबूतरे पर से नीचे गिरनेवाला था। मीनाक्षी देखती हुई बैठी रही। अनसूया दौड़कर उठा लाई।

अनसूया ने मीनाक्षी से पूछा · क्यों बहन! देखते हुए भी बच्चे को सँभालने नहीं गई।

मीनाक्षी,--हाँ, केवल हमारे सँभालने से ही वह जीवित रहेगा? यदि वह दीर्घायु होगा, तो अवश्य जिन्दा रहेगा। मीनाक्षी का मन इस विषय में नहीं, प्राय सभी बातों में निर्लिप्त हो गया है।

बच्चे की चौथी वर्षगाँठ आई। लेकिन सालगिरह मनाने की इच्छा मीनाक्षी के मन में पैदा न हुई। अनसूया ने जबरदस्ती बालक को अभ्यंग-स्नान कराया।

बरसात आई। चार दिनों से लगातार जोरों की वर्षा हो रही थी। मछलीपट्टम् में समुद्र में तूफान आने की आशङ्का से लोग भयभीत थे। रात में समुद्र गर्जन करता उछलता दिखाई देता था।

बालक कृष्णावधानुलु दो दिनों से जुकाम से पीड़ित था। थोड़ा-सा बुखार भी हो आया था। लेकिन मीनाक्षी चुप रही। अनसूया ने पूछा—बच्चे को डाक्टर के यहाँ क्यों नहीं ले जाती? मीनाक्षी ने रूखे स्वर में उत्तर दिया—थोड़ी-सी सर्दी होने से डाक्टर के पास ले जाने की जरूरत क्या? वेंकटेश्वर राव ने दूसरे दिन डाक्टर को बुलाकर बच्चे को दिखाया। डाक्टर दवा देकर चले गये।

दूसरे दिन मीनाक्षी और सूर्यनारायण दोनों बीमार पड़े। अनसूया ही बच्चे को सँभालती रही। कफ के बढ़ जाने से बच्चे का साँस लेना भी मुश्किल हो गया। बीमारी बढ़ती गई और रात्रि को सदा के लिए बच्चे को उठा ले गई।

मीनाक्षी और सूर्यनारायण उस ज्वर की तीव्रता से हिल-डुल नहीं सके। बच्चे को श्मशान में ले जानेवाला कोई न था। आखिर वेंकटेश्वर राव को ही ले जाना पड़ा। उस बच्चे की मृत्यु से मीनाक्षी और सूर्यनारायण को कोई विशेष दुःख नहीं हुआ। उन दोनों ने वैसा ही दुःख प्रकट किया, जैसा पड़ोसी बालक के मर जाने पर लोग दुःख प्रकट करते हैं।

वेंकटेश्वर राव के बच्चे को ले जाते देख मीनाक्षी और सूर्यनारायण रो पड़े। सूर्यनारायण ने रोते हुए ही कहा—'भाई, उसका ऋण चुक गया है। तीन वर्ष भी अभी पूरे नहीं हुए।' इसी बीच उनके नेत्र दमक उठे। उनके मन में कोई नई भावना जाग्रत हुई। आवेश के साथ कहने लगे 'वेंकटेश्वर राव! ले जाओ इसे। तुम अपने हाथों से ही फेंक आओ। बच्चे को जोर से छाती से लगाओ। खिसक न जाय। तुम्हारे बच्चे को मैंने छिपा रखा है? देखो वही यह है। तुम्हारे बच्चे को तुम्हें दे दिया। अब तुम्हारी इच्छा, जो चाहे

कर लो। तुम्हारा ऋण चुकाया। इस तरह बड़बड़ाने लगे। वेंकटेश्वर राव चुपचाप बच्चे को ले गये।

एक वर्ष गुजर गया। मीनाक्षी अब षोडशवर्षीया युवती-जैसी दिखाई देने लगी। उसके खोये हुए सौन्दर्य और स्वास्थ्य पुनः आ गये।

सूर्यनारायण ४५ वर्ष की अवस्था में इस माया से पूर्ण काया को छोड़ चले गये। लेकिन फिर उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी।

●

दिन ढल गया

सुब्बन्ना खाट पर से उठ बैठा। खड़े होने की कोशिश की। लेकिन आँखें चकरा गईं। अन्धकार भँवर मारते पर्दों में उसके चारों तरफ फैल रहा है। असंख्य लाल-लाल तारे उसका पीछा करते नजर आ रहे हैं। पैर अपने-आप ऊपर उठते जा रहे हैं।

घबड़ाये हुए सुब्बन्ना ने बड़े जोर से आँखें बन्द कीं। उस टूटी खाट के पायों को दोनों हाथों से जकड़कर, अपने को न रोक सकने के कारण, खाट पर गिर पड़ा। थकावट उसके शरीर को शिथिल बना रही है। साँस बाहर न निकलने के कारण कंठ में छटपटा रही है।

पाँच-छह मिनट तक वैसे ही लेटा रहा। यह क्या ? जैसे उसके शरीर पर से ही नियंत्रण-शक्ति टूटती जा रही है। उसका कारण जानने के लिए मन दिमाग को टटोलने लगा। दिमाग विचारों से शून्य है। उसे केवल यही भान हो रहा है कि लाल और काले तारे चक्कर काट रहे हैं। छोटे तारे बड़े हो-होकर छटपटा रहे हैं। थोड़ी देर के बाद दम घुटने लगा।

पुनः निस्तब्ध वातावरण············!

फिर एक बार सुब्बन्ना ने अपना साहस बटोरकर कुछ सोचने का प्रयत्न किया।

सहसा उसे ऐसा लगा कि वह मर तो नहीं गया है ?

सुब्बन्ना का कलेजा धड़क रहा है। शरीर पुलकित हो उठा। अनायास हाथ माथे का स्पर्श करने लगा। पसीना छूट रहा है और हाथ भींग गया है।

कलेजे की धड़कन बन्द हो गई। वह मरा नहीं। केवल बेहोश हो गया था ! मर जाता तो अच्छा होता।

लेकिन मरने की कल्पना करते समय वह जैसे घबड़ा गया था, वैसे अपने को जिन्दा पाकर भी वह घबड़ाने लगा।

आखिर कितने दिन तक चारपाई पकड़े रहेगा ? मृत्यु का भय मन में बैठ गया है। उसका बूढ़ा मन अशुभ की कल्पना कर अपनी भाषा में शान्ति की अपेक्षा करने लगा।

ऐसी जिन्दगी की अपेक्षा मृत्यु ही अच्छी हो सकती है। लेकिन वह धूर्त मृत्यु जल्दी आ धमके तब न ? ठीक पिछले श्रावण मास में जाड़ा देकर बुखार शुरू हुआ और वह कम्बल ओढ़कर लेट गया था। फिर पूर्णिमा आ गई। वह अभी तक उठने की हालत में नहीं है। एकान्तर ज्वर धीरे-धीरे तेजरा हो गया। ज्वर की हालत में ही वह सब कुछ भूल, निश्चित पड़ा रहता है। पर उसके उतरते ही असीम थकान का अनुभव करता है।

तीन दिनों से सुब्बन्ना ने कुछ खाया-पिया नहीं। ज्वार का खाना उससे खाया नहीं जाता। चावल मध्यवित्त परिवारवालों के लिए भी दुर्लभ है, तो उसे कहाँ से मिले ? नंबिरंगय्या, जो देहाती वैद्य है, चावल और दाल खाने को कहता है। यही पथ्य है। न खाय, तो वह क्या समझेगा ? जब कि अपनी बहू को भी लाल चावल (कुछ घटिया चावल) का खाना नहीं मिलता।

सुब्बन्ना हाथ-पैर पसार कर चित लेट गया। फटी हुई गाँठों से भरी अपनी धोती को उसने सँवारने की कोशिश की। वह कमबख्त धोती घुटनों तक भी आये तब न ? धीरे-से अपने छड़ी-सरीखे हाथ से बगल में पड़ी चादर को ऊपर खींच लिया।

सुब्बन्ना परसाल अनन्तपुरम् के बाजार में जाते वक्त कार्त्तिक के हड़कंप जाड़े में इस दुपट्टे को ओढ़ता, तो एकदम सर्दी का अनुभव नहीं होता था। उस समय वह चादर तीन तहों से हथेली-जैसी मुटाई में थी। अब तो वह भी एक ही तहवाली धोती सरीखी हो गई है। उसी की भाँति वह भी पतली हो गई है। इतनी मोटी चादर को ढोनेवाले मर्द आज के दिनों में कहाँ दिखाई देते हैं ? उन दिनों के चर्खे और करघे आज रहे ही कहाँ ? उस जमाने की-सी कपास की खेती भी इस समय कहाँ होती है ? गाँव के द्वार पर जो मुगरी (बड़ा गोल पत्थर) पड़ी हुई है, उसेउठाने वाला कोई मर्द अब दिखाई ही नहीं देता है। उन दिनों वह आसानी से ऊपर उठाकर फेंक देता था। खेत में जाते.........

सुब्बन्ना आँखें मूँद सीधे उन दिनों का अवलोकन करने लगा।

वह जब जवानी में था, उन दिनों की बात है। सुबह होने के पहले ही खेत में पहुँच जाता और हल जोतने लगता। उसके हल चलाते समय एक भी मोड़ नहीं आता। वे बैल[1] भी इधर-उधर खिसकते तक नहीं थे।

सुब्बन्ना ने स्वयं जो आरा तैयार किया था, वह सदा उसके कंधों पर उछलता रहता। लेकिन एक भी दिन बैलों पर उसकी मार पड़ने की नौबत नहीं आती थी। वह केवल हुँकार करता, तो बस दोनों बैल

---

१ नीलछन कर्म करने के पहले की अवस्था के बैल जिसे तेलुगु में 'कोडे' अथवा 'पसिगित्तलु' कहते हैं। उसके दाँत भी अभी-अभी निकलते रहते हैं। —अनु०

फुफकारते दौड़ लगाते थे। उन पशुओं में कैसा पौरुष और रोष भरा हुआ था। वह मारना चाहता, लेकिन मार पड़ने के पहले ही बैल आसानी से समझ जाते थे। किस माँ के लाल थे वे दोनों बैल! एक दिन भी उसने गाली नहीं दी और ऐसा अवसर भी बैलों ने नहीं आने दिया।

गाँव के पटेल रेड्डीजी को उनके कर्ज चुकाने में बैलों को बेचे चार साल पूरे होने को हैं। रामिगाडु ने बताया कि पिछले साल उन बैलों के कमजोर पड़ जाने के कारण रेड्डीजी ने उन्हें बेच दिया है। बड़े लोगों की खेती है न। हारी करनेवाले लोगों की मार बेचारे वे सहन नहीं कर सके होंगे। कसाई के घर तो नहीं गये हैं न?

सुब्बन्ना का कलेजा काँप उठा। उसका सारा शरीर पसीने से तर हो गया। थोड़ी देर तक वह निःस्तब्ध रहा। बाईं करवट ली। चारपाई के नीचे रखी थूँकदानी, जिसमें राख डाली गई थी, में थूक दिया।

सुब्बन्ना की उस बैलों पर अपार ममता है। रेड्डीजी को बेचने के बाद भी रोज गली के मोड़ पर बैठे बैलों को नहलाने ले जाते समय उनके शरीर पर हाथ फेरकर ही वह घर लौटता था। यह सोचते-सोचते वह सो जाता कि रेड्डीजी के घर पर तो बैलों के लिए चारे की कमी नहीं है। फिर क्यों दिन-ब-दिन बेचारे कमजोर होते जा रहे हैं। इसलिए जब कभी सुब्बन्ना रेड्डीजी के नौकर रामिगाडु को देखता तो सलाह देता रहता कि बैलों की जरा सावधानी से देखा करना भाई! लेकिन बेचारे रामिगाडु का इसमें दोष ही क्या?

रेड्डीजी के घर जाने के बाद तो बैलों के कंधे पर हमेशा जुआ लगा रहता। प्रति दिन उन्हें स्टेशन जाना पड़ता। कोई-न-कोई उनके घर रोज अवश्य आ जाता, नहीं तो घर से कोई-न-कोई स्टेशन जाता। आखिर वे दोनों गाड़ी के बैल बन गये।

स्टेशन भी क्या कम दूर पर है? चार कोस की दूरी पर है। बड़ों की बात क्या कहें, एक घण्टा पहले ही रवाना हो जाते, तो बैलों को भी आराम मिल जाता। लेकिन ऐसा कहाँ होता है। ऊ हूँ! ऐसा नहीं होता। ठीक रेलगाड़ी के समय से डेढ़ घण्टा पहले ही बिस्तर आदि गाड़ी में पहुँचा देते हैं। रामिगाडु तो उसके एक घण्टा पूर्व ही बैल जोतकर रस्सी थामे बाजार में खड़ा रहता है। एक सफेदपोश साहब गाड़ी पर सवार होते ही जल्दी जाने का आदेश देते हैं। फिर क्या, बैलों की दौड़ लगाई जाती है।

एक दिन की बात है। रेल कुछ दूर पर दिखाई दी। रामिगाडु ने बैलों को हाँकते आरा दिखाया। लेकिन बैल थक जाने के कारण रास्ते के पास बहनेवाले नाले में कूद पड़े। जोर मारने पर भी बैल हिले-डुले नहीं। गाड़ी में बैठे सज्जन ने रेल छूट जाने का सारा क्रोध बैलों पर दिखाया। उसके शरीर पर आरे के निशान पड़ गये। इस बात को सुनने पर सुब्बन्ना ने उस दिन पानी तक नहीं पिया।

× × ×

पैरों की आहट पाकर सुब्बन्ना ने आँखें खोलकर देखा और पूछा—'कौन है?'

'क्यों मामा, बिलकुल कमजोर हो गये हो?'

'ओह तुम! रामुडु। अब रहा ही क्या। दिन ढल गये हैं। अब तब में डूबनेवाला हूँ।'

'अमावास्या की दवा लाने जाता हूँ। तुमको साथ ले चलने को आया हूँ।'

'मैं कहाँ चलूँगा। तुम्हीं लेते आओ। बहू से पूछकर पैसे लेते जाना।' सुब्बन्ना ने धीरे-से कहा।

बहू पुल्लम्मा चिढ़ती हुई बाहर आई।

'क्यों बे। बूढ़ा क्या कहता है।···जब देखो, पैसे···पैसे···पैसे···। कहाँ से लायेंगे ? हमेशा पैसे की रट लगा रखा है।

'आ, कुछ नहीं, चाची जी। अमावास्या की दवा मैं ही लेते आऊँगा।'

'रामुडु, क्या अमावास्या, क्या पूर्णिमा। डेढ़ साल से चारपाई पकड़े हुए हैं। नंत्रिरंगय्या, करणम सुब्बय्या, वड्ल रामन्ना की दवाएँ हो गईं। अब नाई नारायण दवा दे रहा है। अमावास्या की दवा क्या ? बेटा तो है न उड़ेलने के लिए।' कहते पुल्लमा गगरी लेकर पायल की रुन-झुन आवाज करते कुएँ से पानी लाने गई।

'तो मामा जी, मैं ही लाऊँगा। चिन्ता न करो।' यह कहते रामुडु वहीं जमीन पर बैठ गया। अपनी धोती के छोर में बँधी गाँठ खोल सामने रखा। आधी सुपारी निकाल कर फूँक करके मुँह में डाल लिया। एक सूखा पान निकालकर उस पर थोड़ा-सा चूना लगाया, उसे भी मुँह में लेकर चबाने लगा। तम्बाकू लेकर जीभ पर रख लिया।

'क्यों मामा जी। अभी तक तुम्हारा बेटा नहीं आया ?'

'मैंने जल्दी आने को कहा था। लेकिन वह आये तब न ?'

'अब तब कर्ज नहीं चुकाया क्या ? बैल और खेत भी कर्ज में लिया है न ?'

'आ, इन से ही रेड्डीजी का कर्ज पूरा हो जायगा ? काम हम करें और जियें ठाट से वे लोग।'

'मामा, तुम्हारी जमीन तो सोने की है, सोने की। कितना ऋण था ?'

'चार सौ रुपये नकद। लड़के की शादी के समय के ३२ सेर धान बस। पिछले साल की फसल तो खराब हो गई न।'

'ह , किस साल फसल खराब नहीं हुई । अकाल हमें कब नहीं है । इस साल भी तो वही बात है ।

'पुराने जमाने में फसल कितनी अच्छी होती थी । वीर ब्रह्म[१] ने ठीक ही कहा था कि इस करजुग में पाप बढ़ गया है । इसलिए······'

इतने में जोर से चिल्लाती हुई पुल्लम्मा भीतर आई । '······न मालूम, ये लोग जीनेवाले हैं या मरनेवाले । उसका सिर फूट जाय । एक कुआँ है, पीपे-के-पीपे भर-भरकर ले जायें तो, हमारी हालत क्या होगी ? सवेरे एक गगरी लाता हूँ, तो शाम तक पानी के लिए नहीं जाती । एक बूँद भी तो घर में पानी नहीं है भाभी '

उस आगंतुक औरत ने कहा--'मेरे घर में भी पानी कहाँ है ? चलो पुल्लम्मा ! नहर से पानी लेते आवें । हाँ, भूल गई री ! नहर भी सूख गई है । अब पहाड़ी तालाब पर जाना होगा ।'

'मैं लेता आऊँगा चाची एक घड़ा-भर पानी । इन बड़े लोगों के पापों से ही कुएँ का पानी खतम होता जा रहा है ।' कहते रामुडु उठ बैठा और अँगोछा कंधे पर डालकर खड़ा हो गया ।

'वे तो खूब नहाते हैं, जब कि हमें पीने को पानी नहीं ।'

'हमारा भी बस चले तो तीनों जून नहावें । बनाकर खिलानेवाले हों, नौकर-चाकर हों, तो नहाने की क्या कमी ?' पुल्लम्मा ने मुँह बनाकर गगरी रामुडु के हाथ में थमा दिया ।

'क्यों बूढ़े दादा ! अभी तक हाथ-मुँह नहीं धोया । दुपहर होने को है, अभी तक हमारे घर में सुबह नहीं हुई ?'

'कमर बैठ गई है री ! उठने की कोशिश करता हूँ, तो आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है ।'

---

१ आन्ध्रदेश के एक प्रसिद्ध सन्त, जिन्होंने अनेक विषयों की भविष्य-वाणी की थी । लोगों का विश्वास है, उनकी वाणी सत्य साबित हुई और हो रही है ।— अनु०

"मेरी खबर लेनेवाला ही कौन रहा ? सवेरे जो उठी, अभी तक पल-भर भी आराम नहीं। इस गृहस्थी से तंग आ गई। किसी कुएँ या तालाब में कूदकर नाक-मुँह बन्द कर लूँ तो आराम मिले।"

'उसे आने दो, बहू, जल्दी क्या है ?'

'आ, वे लोग उन्हें आने दें तब न ? किसी बस्ती में भेजा है, कौन जाने ?' कहते पुलम्मा ने घर के भीतर घुसनेवाली बिल्ली पर झाड़ू दे मारी। वह झट-से ताक पर कूदकर खिड़की की राह से चंपत हो गई।

'इस बिल्ली से नाकों दम हो रहा है।' पुलम्मा पिछवाड़े की तरफ गई।

बूढ़े ने करवट बदली। उसकी कमर दर्द करने लगी। 'ओह !' कहते उसने जोर से कमर पकड़ ली। अपने-आप में वह गुनगुनाने लगा—'छीः ! इस जिन्दगी से बाज आया।'

× × ×

बूढ़ा सुब्बन्ना अपने समय में एक अच्छा किसान समझा जाता था। तीस एकड़ देवमातृक जमीन और दो एकड़ नदीमातृक। दो जोड़े बैल। एक नौकर। ऊपर से गाय, भैंस और भेड़-बकरियों की कमी नहीं थी। हमेशा हाथ में पैसा चलता था।

धीरे-धीरे दो-तीन साल लगातार बड़े-बड़े अकाल आये। जमीन-कर और खर्च भी बढ़ते गये। उल्टे रेड्डीजी के यहाँ कर्ज बढ़ता गया। इससे अपनी इज्जत बचाने के लिए अब-तक थोड़ी-सी जमीन बेचकर कर्ज चुकाता आया।

लेकिन जब से सुब्बन्ना का लड़का घर सँभालने लगा, तब से तो परिवार की दशा और भी बिगड़ गई। इसकी शादी का ऋण भी सिर

पर सवार हो गया। लड़के ने बाप की बातों पर ध्यान दिये बिना कौल पर भी जमीन ली। फसल खराब हो, तब भी कौल की रकम चुकानी पड़ती थी। इस तरह भी कुछ कर्ज बढ़ गया। अकाल में अधिक मास की भाँति इन सब तकलीफों के बीच बूढ़ा भी बराबर बीमार रहने लगा। इस बार तो चारपाई ही पकड़ ली। उठना भी मुश्किल हो गया। जब फसल की दर बढ़ गई, तब उसके पास रही-सही जमीन भी जाती रही।

तेजरा ज्वर ने तो सुब्बन्ना को एक दम झुका दिया। देहाती दवाइयों से बीमारी छूटती न थी, उलटे बढ़ती गई और पथ्यों से तो वह और भी कमजोर हो गया।

कल-परसों से तो कै का ताँता लग गया है। कानों में बहर मार गई। न मालूम उसके पेट में कहाँ पर था ऐसा पित्त। बराबर पित्त निकलने लगा।

सुब्बन्ना का बेटा तो अब रेड्डी के ही घर पर रहता है। खेती करता है। उसे देखनेवाला कोई रहा ही नहीं। बेचारी पुल्लम्मा तो काम की चक्की में पिसती जा रही है। इन दिनों में तो वह मजदूरी करने के लिए जाया करती है।

यदि वह लक्ष्मी रहती, तो थोड़ी-सी मदद मिल जाती। पत्ते-पकाकर कमर सेंकती, तो दर्द कुछ कम हो जाता। लेकिन वह भी गाँव में नहीं है। गाँव के आधे से ज्यादा लोग जीविका के लिए पश्चिमी गाँवों के प्रवासी हो गये हैं।

बेचारे गरीब लोग ईन्धन के लिए जंगल में लकड़ी तोड़ने जाते, तो गार्ड पकड़ ले जाता है। जंगल में मवेशी भी चरने जाय, तब भी उन्हें गार्ड सरकारी हवाले में ले लेता है। दो-चार आने बख्शीश भी दे, तो उन

दिनों में नुकसान न होता था। लकड़ी की एक गठरी बारह आने में बेच देते थे।

बूढ़े को सभी ओर सूखी टहनियाँ ही दिखाई देने लगीं। उसकी पोती लकड़ी बीनने गई, लेकिन अभी तक नहीं लौटी। 'बासी' ले गई है कि नहीं, पता नहीं चलता। बहू से पूछना चाहा, लेकिन मुँह से बोल नहीं निकले। बेचारी, उसे कौन तकलीफ आ गई हो, कौन जाने। वह सयानी भी हो गई है। उसकी सखी सुब्बुल की शादी भी हो गई है, लेकिन उसकी अभी तक···

बूढ़ा किसी गम्भीर चिन्ता में मग्न हो गया। सुकन्ना तो इसका रिश्तेदार ही है। पहले की स्थिति होती, तो सुकन्ना अपने पुत्र से उस लड़की की शादी करना अपना सौभाग्य समझता। रंगम्मा बहन भी रोज यही बात कहती रहती। अब तो वे लोग इधर झाँककर भी नहीं देखते। सुकन्ना से अब वह सुंकि रेड्डी बन गया है।

वे तो रेड्डी साहब हैं, हम तो मामूली किसान हैं, किसान ही क्या, जमाना ऐसा ही रहा, मजदूर ही बन जायेंगे।······

तो भी क्या, पहले सुकन्ना का पिता उसके घर में नौकर था। अब तो बहुत बड़ा आदमी बन गया है न। देखते-देखते जमाना भी कैसे बदल गया? सुकन्ना को विधवाओं की अच्छी खासी जमीन जायदाद मिल गई। इसलिए न? बहन विधवा बनी, तो दस-हजार नकद रुपये ले आई। सुकन्ना ने रुपये के चार आने के ब्याज से खर्च किये बिना महाजनी करके नकद की वृद्धि करने लगा। धीरे-धीरे मूँगफली का व्यापार शुरू किया। उसमें भी काफी नफा हुआ। किस्मत ने भी साथ दिया। भाग्य प्रबल था। इसपर वह इठलाता फिरता है, समझ में नहीं आता।

होंठ चलाते हुए बगल में से पानी का गिलास लिया। पानी के दो-तीन घूँट भीतर गये नहीं कि कलेजा पकड़ने लगा। फिर लेट गया। लेट नहीं गया, गिर गया।······

पोती नागुलु दादा को खोजती आई। उसके कंठ की आवाज सुनकर सुब्बन्ना ने ऊपर दृष्टि उठाकर देखा। जंगल के गार्ड ने हँसिया छीनकर खाली हाथ भिजवा दिया था। गठरी भी चौपाल तक उठवाकर ले गया था। नागुलु की आँखें लाल हो गई थीं। बेचारी के पेट से दुःख फूटने लगा, तो वह रोक नहीं पाई और हिचकियाँ लेने लगी।

भीतर घड़े के फूटने की आवाज हुई। पुल्लम्मा खीझती हुई भीतर चली गई।

'यह बूढ़ा तो केवल खाने के लिए है। औरतें काम पर हैं, तो आँख मूँदकर न सोवें, तो क्या उधर देखा नहीं जा सकता था।' यह कहते पिछवाड़े सुखाये ज्वार और धान को छोड़ वैसे ही पुल्लम्मा आई।

'चेय, चेय' कहते नागुलु पिछवाड़े की तरफ दौड़ गई। बकरा टूटी दीवार लाँघकर ज्वार खा रहा है। नागुलु ने एक पत्थर उठाकर जोर से बकरे पर दे मारा। बकरा घबराकर छलाँग मार, घर में घुस पड़ा। छलाँग मारने पर गिर पड़ा, फिर उठकर भाग गया।

बूढ़ा 'ओह, माँ मर गया!' कहकर चिल्लाया। शायद बकरे के खुर उसके कलेजे में चुभ गये हों, ऐसा मालूम हुआ। बकरा बूढ़े की छाती पर कूद पड़ा था। बूढ़े की आवाज सुनकर पुल्लम्मा और नागुलु दौड़ती आईं। पानी मुँह पर छिड़का। बूढ़े ने आँखें गिरा दीं।

उसी समय वहाँ एक पड़ोसिन आई। उसने कहा—'बूढ़े के मुँह में जरा तुलसी का पानी छोड़ दो तो।' पश्चिमी झरोखे से धूप की छाया सुब्बन्ना के मुख पर पड़ी।

दिन ढल गया!!

●

संन्यास की चाट

जोर से दरवाजा ढकेलकर घर में प्रवेश करके मैंने कहा - 'मैं जा रहा हूँ। अब हम दोनों में पटने की नहीं।'

'मैंने किया ही क्या? आप व्यर्थ ही इतने क्रुद्ध क्यों होते हैं? परिवार में पति-पत्नी के बीच मन-मुटाव आ जाय, तो उन्हें दूर करना चाहिए। कोई सम्बन्ध तोड़कर इस प्रकार कहीं भाग जाता है क्या?'

* * *

"बोलते क्यों नहीं आप? कहीं इस प्रकार की विडम्बना होती होगी। कहा गया है 'गृहस्ती गुप्त व्याधि व्याप्त", इस तरह मेरा अपमान करना आपको शोभा नहीं देता। वास्तव में मेरा अपराध ही क्या है? कहिए तो सही!"

'फिर आरम्भ कर दूँ अपनी रामकहानी?'

'नहीं जी, नहीं! फिर उस कहानी का प्रारम्भ न कीजिए। मैं आपके पाँवों पड़ती हूँ।'

'तो चुप रहो। मुशी! सड़क पर जा एक गाड़ी तो बुला ला!'

'ऐ मुशी! जरा ठहरो तो। आखिर यह कहाँ की यात्रा हो रही है?'

'कहीं जा रहा होऊँ, इससे तुम्हारा क्या मतलब?'

'गाड़ी लाऊँ बाबूजी ?'

'तुम अभी तक गये नहीं !'

'तो आपका जाना निश्चित है ?'

'इस तरह हकला के क्यों पूछती हो ? मैं जा रहा हूँ। हाँ, अपने अतिशय दुःख को दबाते हुए मैंने कहा।

'आपके दर्शन फिर कब होंगे ?'

'तुम इसे परिहास मत समझो। यही अन्तिम दर्शन है··· समझी···', मैं ये शब्द कह तो रहा था, परन्तु मेरा कण्ठ काँप रहा था। उस दिन के मेरे वचन परिहास में नहीं कहे गये थे, न केवल अभिनय-मात्र ही करना चाहता था। जाना निश्चित था। इसके साक्षी ईश्वर ही हैं। परिवार को त्याग कर जाने का प्रयत्न किया था। जिस परिवार में सुख नहीं है, उसमें रहकर दिन बिताने से प्रयोजन ही क्या है ? मैं रहूँ, या न रहूँ, पितृ-उपार्जित सम्पत्ति द्वारा परिवार का भरण-पोषण होता ही रहेगा। कांतम के साथ दिन सुख से व्यतीत हो गये। आगे मुझे जीवन में अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा। चाँदनी के दिन तो कभी के बीत चुके थे।

बच्चे तो भगवान् के भरोसे पर हैं। मैं व्यर्थ यहाँ जान क्यों खपा रहा हूँ। कमाकर महल बनाना तो है नहीं। मेरी कमाई साहब की कमाई बीबी की सिलाई के समान है। मेरे द्वारा लोकोपकार शून्य है। तो इस भवसागर को पार करने का प्रयत्न ही क्यों न करूँ ? मेरे बिना ही चल जाता है, इसीलिए मैंने उस दिन निश्चय किया कि परिवार को त्याग कर अन्य देशों में अज्ञातवास करते हुए भक्ति को प्राप्त कर मुक्ति को पाना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। यह सोलह आने सच है।

मैंने अपना निश्चय कांतम को सुनाया भी, लेकिन उसने विश्वास नहीं किया।

'सचमुच जा रहे हैं, क्यों?'

'हाँ तो……'

'तो ठीक है। जानेवालों को रोक भी कहाँ सकते हैं? एक बात सुनिए तो! छोटी बच्ची भी आपके साथ जाना चाहती है। कैसे फुदक रही है! एक बार लीजिए तो!'

'एक बार क्या? आधा बार भी नहीं लूँगा। पारिवारिक बन्धनों को तोड़कर जानेवाले को इन प्रेम-बन्धनों से बाँधने का प्रयत्न क्यों करती हो? जाने दो, रोको मत!'

'हँसती हो? मेरे हृदय में उठे तूफान को तुम क्या जानोगी? मुझे यह परिवार बिलकुल नहीं चाहिए……यह नरक-कूप है…'

'संघ सरनं गच्छामि
धम्मं सरनं गच्छामि
बुद्धं सरनं गच्छामि'

'ओह! कैसा कठोर हृदय है आपका। आप साक्षात् बुद्ध भगवान् होते जा रहे हैं। आप जानते नहीं, भगवान् बुद्ध ने भी महाभिनिष्क्रमण के पूर्व पत्नी-पुत्र की ओर एक बार प्रेम-भरी दृष्टि से देखा था।'

'तो ठीक है! एक बार! एक ही बार……।'

'लो तो…'

'मुझे बाँधो मत……बुद्धं सरणं गच्छामि…'

'………'

'ऊँ……ऊँ……हूँ'

'मैं नहीं आऊँगी…उसे भी ले जाइए। सावधानी से पालिए। शिष्या होगी।'

'सचमुच जा रहे हैं ?'

'जा तो रहा हूँ, बच्चों को ठीक से सँभालो। गाय है भरण-पोषण के लिए।' यह कहकर पीछे की ओर घूम गया। आगे देखता क्या हूँ—मेरे सभी बच्चे कहीं जाने की तैयारी में हैं। कांतम से पूछा—

'इन बच्चों को मेरे साथ क्यों कर दिया ? इनको ले लो। मैं चला जाऊँगा। इन अन्तिम दिनों में भी तुम मेरी अनुकूलवती नहीं हो।' कंम्पित कण्ठ से मैंने कहा।

'ये बच्चे मेरी बात नहीं मानते। आप ही देख लीजिए।' कहती हुई कांतम जल्दी से अन्दर चली गई।

'अरे छोकरे तुम सब कहाँ ? धत्! माँ ने उप्पुमा (दक्षिण-भारत का खाद्यविशेष) तैयार कर रखा है, जाओ।'

'ऊँहूँ······ऊँहूँ······'

'कहाँ चलते हो।'

'आप कहाँ जाते हैं ?'

'मैं जा रहा हूँ···कहीं······'

'ऊँ · ऊँ···ऊँ······'

'मैं भी चलूँ · बाबू ··'

'अरे गधे, मैं परिवार को छोड़ रहा हूँ।'

'अरे मूर्ख, मैं संन्यास ग्रहण करने जा रहा हूँ।'

'बाबूजी, मैं भी छोड़ दूँगा।'

''मैं भी संन्यास लूँगा पिता जी।' मेरे पाँच साल के लड़के ने उठकर कहा।

मुँह बनाकर मेरी लड़की सुशी ने कहा,

'मैं······पिता जी······'

सभी बच्चों ने मेरे साथ संन्यास लेने की बात कही और सब मेरे साथ हो गये। बुद्ध भगवान् को पुत्र एक ही था, इसलिए आसानी से बन्धनों को तोड़कर भाग सके। वह भी उसके सोते समय! वह भी अर्द्धरात्रि के समय आधे दर्जन बच्चों को छोड़कर जाना पड़ता, तो बुद्ध भगवान् को मालूम होता कि मनुष्य इन पारिवारिक बन्धनों में कैसे बँधा हुआ है?

मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठ गया।

बच्चों ने मेरे मुख-मण्डल की ओर निहारा। मेरी गंभीर मुख-मुद्रा को देखकर सभी एक-एक कर खिसकने लगे। छोटे बच्चे रोते हुए अपनी माँ के पास चले गये। मैं आँखें मूँदे लेटा रहा।

मुझे एक दृश्य दिखाई दिया—सारथी दुर्ग के बाहर घोड़े को तैयार करके खड़ा हुआ है। बुद्ध भगवान् गंभीर मुख-मुद्रा में, पत्नी-पुत्रादि, धन-सम्पत्ति सर्वस्व का त्याग कर बड़ी आतुरता के साथ चले आ रहे हैं। बुद्ध भगवान् की प्रार्थना कर मैंने भी एक बार घर तथा चतुर्दिक् निहारकर एक गहरी साँस ली और देहली पारकर इस विशाल विश्व में आ गया।

भगवान् बुद्ध का स्मरण करते हुए गली का मोड़ पार कर रहा था कि पीछे से चिल्लाते हुए राधा और विजय दौड़ते आ गये मेरी ओर। बड़ा लड़का कुरता, निक्कर कोट-बूट और चमकीली टोपी पहने आगे जा रहा था, मेरे जाने का विचार करके मेरी ओर निहारते जा रहा था। बड़ी दो लड़कियाँ नये लहँगे और ब्लाउज पहने आगे बढ़ रही थीं। सम्भवतः अपनी माता से ली होंगी—दोनों के गले में सोने की मालाएँ चमक रही थीं। कुछ दूर पर मेरे रास्ते से ही सब जा रहे हैं।

उन बच्चों को देख मैं चकित रह गया। लड़कियों को बुलाकर घर

जाने को कहा। उन्होंने खिलखिलाते हँसते उत्तर दिया---'हम भी दूसरे काम पर जा रही हैं, आपके साथ नहीं।'

लड़के से कहा --'दुष्ट तुम कहाँ ? जाओ।'

मुँह बनाकर लड़के ने उत्तर दिया— 'मैं भी चल रहा हूँ, पिताजी !'

'मैं जा कहाँ रहा हूँ—तुम समझते क्या हो ?'

'माँ ने मुझे सब बता दिया है—देखिए बहनें भी जा रही हैं वे दोनों आपके आगे उधर खड़ी हैं।'

'कहाँ जायँगी ?'

'वहीं ......'

'कहाँ—तुम्हारी माँ ने क्या कहा है ?'

'............'

'मैं भी चलता हूँ पिता जी,'

'मैं कहाँ जा रहा हूँ—बताओ तो सही।'

'माँ ने मुझे सब बता दिया है -- आप सिनेमा जा रहे हैं।'

'आँ......आँ......'

मैं चकित रह गया। दोनों बच्चे मेरे पैरों से लिपटे रो रहे थे। उस गली की औरतें खिड़की से यह तमाशा देख रही थीं। मुझे यह दृश्य बहुत ही बुरा लगा। छोटे लड़के और लड़की को कंधों पर उठा द्वार पर पहुँचा। बड़ा लड़का हताश हो धीरे-धीरे चला आ रहा था मेरे पीछे। द्वार पर पहुँचकर खटखटाया।

'कौन है ? क्या हाथों में खुजली है ? जाइए।'

'द्वार खोलो...'

'.........'

'द्वार, ओह...द्वार खोलो तो !'

'कौन है ? द्वार···!'

'मैं हूँ······'

'यानी······· '

'ओह······मैं ही !'

'क्यों ?'

'खोलो तो कहूँ ।'

'कहेंगे क्या ? परिवार पर विरक्ति पैदा हो गई न ?'

'ऊँ···नहीं—खोलो तो कहूँगा ।'

'नहीं क्या ? कहेंगे क्या ? फिर आये ही क्यों इस नरक-कूप में ? जाइए···अपने मार्ग पर ।'

'एक बात सुनिए तो ।'

'एक बात नहीं दो बात नहीं···जाइए ।'

'सुनिए···तो ।'

'अब सुनूँ क्या ?'

'ओह—बस करो, द्वार खोलो । हाथ दर्द कर रहा है ।'

मेरे लड़के ने कहा—'बाबू जी, अन्दर मत जाइए । द्वार न खोलें, तो हमें क्या डर है ?'

'बेटा तो सलाह दे रहा है न, जाइए,' कहते हुए मेरी स्त्री ने द्वार खोल दिया । अपनी हँसी को दबाते हुए कहा—'फिर यहाँ आये ही क्यों ?'

'इन सबको क्या करूँ ?'

'इसके लिए मैं क्या करूँगा ?'

'यह सब तुम्हीं ने किया है ।'

'इन बच्चों पर विजय प्राप्त न कर सकनेवाले ही दुनियाँ को जीतने निकले ?'

'जाने दो—मेरे रास्ते से हटो।'

'ऊँ हूँ······'

'यह क्या? खड़ी हो हटती ही नहीं···क्या नाम कहलाना चाहती हो?'

'वैसा ही ······'

'क्या है वह?'

'मान लीजिए कि हार गये हैं।'

'हाँ ठीक। हार गया हूँ। अब हट जाओ। गली की महिलाएँ खिड़कियों से देख रही हैं।'

'नहीं, नेपोलियन ने हार कर अँगरेजों की लाल पताका को प्रणाम किया था, वैसा?'

'जी हाँ!' कहकर मैंने प्रणाम किया। हवा के झोंके से कांतम का आँचल फहर रहा था।

'············'

'क्या है, वह?'

'कुछ नहीं, पक्षी घोसलों में जाते कलरव कर रहे हैं।'

'नहीं कोई हँस रहे हैं।'

'जी नहीं आइए,।'

जोर से कांतम ने द्वार बन्द कर दिया।

आँसू

आँसू से मुझे बड़ी नफरत है। हो सकता है कि विना कारण के रोना बड़प्पन हो, पर सामाजिक मर्यादा और सभ्यता की दृष्टि से मुझे ठीक नहीं जँचता। बड़े लोग आँखों में आँसू भरते हैं, तो मुझे बहुत बुरा लगता है। मुझे ही नहीं, सभ्यता से परिचित हर एक आदमी को। हरिश्चन्द्र नाटक को देखते समय अभिनेता ठीक तरह से भले ही न रोये, पर प्रेक्षकों में से कुछ लोगों को नाक साफ करते, आँसू पोंछते देख मैं सोचता हूँ कि 'अरे यह कैसी मूर्खता है !' दूसरों को तसल्ली देने के लिए पहुँचनेवाले बड़े-बड़े लोगों का आसानी से आँखों में आँसू भरकर सारा तकलीफों को अपनी मानकर अभिनय करना भले ही मुश्किल हो, लेकिन मेरी दृष्टि में वह सभ्यता कभी नहीं हो सकती।

तीस वर्ष पहले की बात है। उन दिनों मैं अपनी बहन को 'शेषी' कहकर पुकारा करता था। उस समय उसकी उम्र पाँच साल की और मेरी नौ साल की थी। हम अपनी नानी के यहाँ अधिक समय बिताते थे। मेरी माँ कहीं रिश्तदारों के यहाँ चली जातीं, तो शेषी अकेली नानी के यहाँ ही रहती। एक बार मेरे माता-पिता काशी-रामेश्वरम् की यात्रा पर जाते समय हम दोनों को नानी के यहाँ छोड़ गये।

उस समय तक शेषी बहुत चालाक हो चुकी थी। इससे सब कोई प्यार करता। सभी उसे गोद में ले चुमकारते और पुचकारते। इसे देख मुझे ईर्ष्या होती। उस पर अपना अधिकार जताने के लिए कभी-कभी उसे डाँटता और डपटता। शेषी गुस्से में आ जाती और कहती—'मैं राजु मे दोस्ती न कलूँगी!' मैं थोड़ी देर चुप बैठा रहता, फिर वह दौड़ कर मेरे पास आ जाती और समझौता कर लेती –'देखो भैया, फिर ऐसा कभी न कहूँगी। लेकिन तुम भी मुझपर बिगड़ा मत कलो!' उसकी बातों को सुन सबको हँसी आ जाती।

एक दिन की बात है। रात को मामी जी अपने कमरे में थीं। मामा जी आये और उनके कमरे में जाकर दरवजा वन्द करने लगे। माँ की वगल में लेटी शेषी ने देख लिया और मुँह वनाकर बोल उठी—'छीः छीः! भला दरवाजा बन्द करके भी सोया जाता है! छीः छीः'! मामाजी तुरन्त दरवाजा खोलकर हँस पड़े और उसे उठाकर कमरे में ले गये। मामी ने उसे एक गीत सिखाया।

'सजाओ बहू अपने को ससुराल जाना है।'

वास्तव में गीत सुन्दर हो, न हो, लेकिन मेरी बहन की भाषा में रूपांतरित हो वह जरूर सुन्दर लगता था। जब हम अपने ननिहाल में थे, उस समय पड़ोस में एक युवती का गर्भाधान-संस्कार हुआ। हम सब दावत में गये। चौथे दिन जब वह युवती ससुराल जानेवाली थी, उस समय हम भी अपनी मामी के साथ उसके यहाँ गये। शेषी मेरे साथ थी। वह युवती एक कमरे में अपने को सजा रही थी। उसकी सहेलियाँ चारों तरफ से घेर कर उसे अलंकृत कर रही थीं। शेषी खेलते-नाचते वहाँ पहुँची और गाने लगी—

'सजाओ बहू, अपने को, ससुराल जाना है!'

गीत का भाव शेषी बिलकुल नहीं जानती थी, लेकिन बेचारी बहू की आँखें सजल हो उठीं।

शेषी एकाँत में भी छलाँगें मारते यही गीत गाती रहती, उछलते-कूदते, फूल चुनते या घरौंदे बनाते समय भी उस के मुँह से यही बोल फूटते।

'सजाओ बहू अपने को, ससुराल जाना है।' लेकिन जब शेषी के ससुराल जाने का समय आया, उसे यह गीत याद नहीं रहा।

माँ के कहीं जाने पर शेषी रोनी-सी सूरत बना लेती, लेकिन स्वाभिमान के कारण इस भाव को प्रकट होने नहीं देती। एक दिन मैंने कहा—'शेषी माँ के लिए रोनी सूरत बना रखी है।'

शेषी का रोष फूट पड़ा—'कमबख्त, तुमने ही लोनी सूलत बना लखी है! कहते रोने लगी। उसी दिन उसे ज्वर आया। उस दिन से वह दूसरों से बोलती-चालती भी नहीं!

एक दिन वह मिट्टी से घरौंदे बनाते अपने आप में कह रही थी—'यह माँ के लिए है, यह बाबू जी के लिए, यह मेरे लिए, यह भाई के लिए! छीः, भाई के लिए नहीं, उसने मुझे लोनी सूलत बताया! क्या मैंने लोनी सूलत बना लखी है?'

शेषी की आँखें डबडबा आईं। झट उठ खड़ी हुई। घरौंदों को लात मार गाने लगी—'सजाओ बहू, अपने को ससुराल जाना है।'

लेकिन वह रोती जाती थी। आँखें पोंछते उसने पीछे घूमकर देखा तो मैं सामने दिखाई दिया। फिर स्वाभिमान को बटोर कर जोर से 'सजाओ बहू, अपने को ससुराल जाना है!' गाने लगी।

'भाई हम अपने गाँव जायेंगे न?'

'अम्मा-बाबूजी के आने के बाद'—मैंने कहा।

'आ, आने के बाद ही।'

दूसरे दिन वह चारपाई पकड़ी रही। मेरी नानी डर गई। नींद में कभी-कभी वह बड़बड़ाती रहती थी। बाबूजी को तार दिया गया।

दो दिन तक शेषी ने आँखें नहीं खोलीं। तीसरे दिन जरा होश आया, तो आँखें खोलकर चारों तरफ देखा। नानी ने पूछा—'कैसी तबीयत है, बेटी!'

'हमाला गाँव ही अच्छा है, तुम्हाले गाँव से'—शेषी ने कहा।

'अम्मा आयेगी, घबड़ाओ मत! बाबूजी तुम्हारे वास्ते मिठाई, खिलौने सब कुछ लायेंगे। भाई को एक भी न देना, समझी?'

'मेरी अम्मा के आने बाद हम अपने गाँव जाते हैं न?'

'हाँ, बेटी, जायँगे! जरूर जायेंगे!'

'भाई ने ही लोनी सूलत बना लखी है, मैंने नहीं।'

'हाँ, बेटी, तुम तो बड़ी अच्छी लड़की हो न!'

इतने में मेरी माँ दरवाजा खोलकर आँधी की तरह आ गई। शेषी एक छलाँग में माँ के कंधे पर जा बैठी। दोनों बड़ी देर तक विना कुछ वोले रोती रहीं।

'मेरी बेटी को अकेली छोड़कर चले गये।' कहते मेरी माँ आँखें पोंछने लगी।

शेषी फूट-फूटकर रोते हुए मेरी शिकायत करने लगी—

भाई ने मुझे लोनी सूलत बताया है।'

'उसको खूब चपत लगायेंगे, बेटी!' माँ ने उसे समझाया-बुझाया।

मुझे तो अपनी माता पर गुस्सा आया। शेषी रोती भी है, तो वह छोटी लड़की है, सहज है, लेकिन मेरी माँ को क्यों रोना चाहिए। तो भी मैंने रोनी सूरत कभी नहीं बनाई।

+ + +

शादी के बाद हमारी शेषी शेषु हो गई। बहनोई 'शेषु' ही पुकारा करते थे। उसका भाग्य प्रबल था, वह अच्छे परिवार में ही नहीं गई, अपितु उसे अच्छा पति भी मिला।

मेरे बहनोई उस दिन बारिस्टरी की परीक्षा के लिए इंगलैंड जानेवाले थे। बारिस्टर के माने शेषु को उस दिन भी मालूम न था और आज भी मालूम नहीं। वह उसे कोई नौकरी समझती थी।

मैं और बहनोई एक कमरे में बैठे थे। अचानक दरवाजा ढकेलकर 'मेरे नयनन बसे नन्दलाल !' गाती हुई कमरे के भीतर आ धमकी। उसे मालूम नहीं था कि बहनोई कमरे के भीतर हैं। इसलिए तुरंत जीभ काटकर गीत बन्द किया।

'वाह, कैसा भय दिखाती हो'—बहनोई ने कहा।

'तो गीत बन्द नहीं करूँगी।'

फिर गाने लगी—'मेरे नयनन बसे नन्दलाल !'

बहनोई हँस पड़े। मुझे भी हँसी आई। लज्जा के मारे शेषु मुँह मोड़कर चली गई।

हम लोग चौपाल से होकर भोजनालय में जाने लगे, तो बगल के कमरे से फिर वही गीत सुनाई पड़ा। शेषु अपने आप में गुनगुना रही थी मैं दरवाजा खोलने लगा, लेकिन बहनोई ने मेरा हाथ पकड़कर मुझे रोका और थोड़ी देर तक गीत का आनन्द लेने लगे।

भोजन के उपरान्त सब लोग चौपाल में बैठे, बहनोई चारपाई पर लेटे रहे। सबके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी। सब दीन बन गये थे। आज बहनोई विलायत के लिए रवाना होनेवाले हैं। फिर उनके दर्शन कब होनेवाले हैं, कौन जाने ?

—चौपाल से थोड़ी दूर आड़ में बैठे शेषु पान बनाते गा रही थी—'मेरे नयनन बसे नन्दलाल !'

बहनोई ध्यान से गीत सुन रहे थे। लेकिन शेषु को स्मरण नहीं था कि वह गा रही है। उसकी आँखों से दीनता टपक रही है ! उसके होंठ रोने में संकोच कर रहे हैं। उसाँस के कारण नाक फड़क रही है।

इतने में मेरे छोटे भाई ने शुरू किया—'मेरे नयनन बसे नन्दलाल !'

शेषु को तब स्मरण आया कि वह गीत गुनगुना रही है। तुरंत मुँह उठाकर देखा कि कोई उसका गीत तो नहीं सुन रहे हैं ! छोटे भाई को पास बुलाकर कहा—'भैया, तुम गाओ तो !'

'तुम्हीं गाओ न ? गाने में मजा आता है, तो गाती क्यों नहीं ? तभी से गा रही हो न ! ' बहनोई ने कहा। शेषु उठ खड़ी हुई, पान का बीड़ा बहनोई के हाथ में देकर मुस्कराती हुई भीतर चली गई।

बहनोई के साथ मैं भी गाँव के दूसरे सगे-सम्बन्धियों को देखने गया। हम तीन बजे वापस लौटे। शेषु जोर से गा रही थी—'मेरे नयनन बसे नन्दलाल !'

शेषु का कंठ साफ नहीं था। जोर से गाने में संकोच टपक रहा था। लगता था कि वह उमड़नेवाले आँसुओं से लड़ रही है ! बहनोई कमरे की देहली पर जा खड़े हुए। आँसुओं को पोंछने का अवकाश शेषु को नहीं मिला। तेजी से उठ कर भीतर भाग गई।

बहनोई सहानुभूति के साथ मुस्कराते थोड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे।

बहनोई को विदा करने मैं और शेषु—दोनों स्टेशन गये। गाड़ी के आने में अभी १५ मिनट का समय था। सभी मौन खड़े रहे !

बहनोई ने मौन-भंग करते हुए कहा—'१५ मिनट के बाद मैं गाड़ी में रहूँगा !'

'तुम्हारी चाबियों का गुच्छा कहाँ है !' शेषु ने कहा।

जेब टटोलते हुए बहनोई ने पूछा—'ओहो, तुमने नहीं लिया ?'

'ओह, यह तो अच्छी दिल्लगी है, मैं क्या जानूँ ?' उसकी बातों से मालूम हो गया कि शेषु ने लिया है। बहनोई ने जोर देकर नहीं पूछा।

गाड़ी स्टेशन पर आ खड़ी हुई। सामान चढ़ाया गया।

शेषु को देखने पर मेरा दिल धड़कने लगा। उसका सर कुछ-कुछ झुका हुआ था। ओंट आधे खुले थे। आँखों से आँसू ढुलककर गालों को भिगाना मात्र बाकी था। उनके पोंछने पर सब को मालूम हो जायगा कि शेषु रो रही है, इसलिए आँसुओं को जब्त करके खड़ी रही।

बहनोई शेषु के पास पहुँचे। लेकिन उसने सर उठाकर नहीं देखा।

'मैं अब जा रहा हूँ!' बहनोई ने कहा। शेषु ने चाबियों का गुच्छा बहनोई के हाथ में रख दिया। बहनोई ने उसके हाथ को अपने हाथ में लिया।

'छीः, रोती क्यों हो! रोओ मत!' बहनोई ने समझाया।

शेषु ने सर हिलाकर संकेत किया, मानों यह कह रही हो कि रो नहीं रही हूँ! लेकिन आँसू पोंछे नहीं!

'देखो, मैं हो आऊँ?'

शेषु ने स्वीकारसूचक सर हिलाया। बहनोई ने शेषु की पीठ फेरते गहरी साँस ली और गाड़ी पर जा बैठे।

अब शेषु स्वाभिमान को जोड़ मुँह उठाकर चलती गाड़ी की तरफ देखती जी भर कर रोई। कोई देखेगा तो क्या समझेगा! उस हालत में उसको मैं समझा भी नहीं सकता हूँ। असल में ऐसी स्थिति से ही मुझे घृणा है! मुँह बनाकर शेषु को समझाने का भार प्रकृति पर छोड़कर मैं दूसरी तरफ मुँह किये खड़ा रहा।

× × ×

शेषु कुछ समय बाद शेषप्पा हो गई। इस बीच में काफी परिवर्त्तन भी हुए। शेषप्पा की किस्मत पलट गई। मेरे बहनोई थोड़ी-सी अवस्था में ही हमलोगों को दुःख-सागर में डुबोकर सदा के लिए चल बसे। शेषप्पा की अकेली लड़की थी। जमीन-जायदाद की कमी नहीं थी। बहनोई कमाने के लिए जीवित नहीं रहे, लेकिन उनका परिवार

ही धनी था। बहनोई के देहान्त के बाद शेषप्पा हमारे घर पर ही रहा करती थी। भानजी का एक अच्छा संबंध देख विवाह किया। उसका पति ग्रेजुएट था। उसका परिवार धनी तो कहा नहीं जा सकता है; लेकिन किसी बात की कमी भी तो नहीं थी। बी० एल० पढ़ने के विचार से उसने मद्रास में परिवार बसाना चाहा। एक सप्ताह में मद्रास के लिए रवाना होना था कि मैं उसे अपने घर ले आया।

सारे गाँववालों को अपने दामाद को दिखा-दिखाकर शेषप्पा ने दसवीं बार कहा 'मेरे दामाद मद्रास में कलक्ट्री पढ़ने जा रहे हैं!' बी० ए० के बाद जो भी कोर्स पढ़े, शेषप्पा की दृष्टि में वह कलक्ट्री है। दामाद मन-ही-मन हँसकर रह जाते!

मैंने उसे डाँटते हुए कहा - 'अरी, कलक्ट्री क्या है! कलक्ट्री को इतना आसान समझ रखा है?' मेरा डर था कि दामाद की हद से ज्यादा बड़ाई करना सभ्यता नहीं है!

'अरे, तेरी माँ का पेट सोना हो जाय! मुझे वह परीक्षाएं मालूम भी हो तो!' शेषप्पा जोर से हँस पड़ी।

अपनी बेटी को समझाते-बुझाते कहा—'मेरी बेटी मद्रास में न मालूम कैसे दिन बितायेगी! वहाँ की बोली भी समझ में नहीं आती!'

दामाद के सामने बेटी को समझाना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा 'कोई बात नहीं, वह तुम्हारी जैसी भोली-भाली नहीं!'

'अरे, वह तो कल की बच्ची है, जानती ही क्या है?'

शेषप्पा तो जानती है कि वह बड़ी है, प्रकट रूप में उसे रोना नहीं चाहिए। इस सप्ताह-भर में आड़ जाकर आँखें पोंछते मैंने कई बार देखा। लेकिन मेरा विश्वास है। उसको रोते हुए दामाद देखे तो वह अच्छा नहीं होगा! उसका रोना अभिनय नहीं है, यह मैं जानता हूँ।

लेकिन मेरा डर है कि सभ्यता के पुजारी नागरिकों के सामने वह हास्यास्पद और अभिनय-सा दिखाई देगा! शेषप्पा रवाना होने के समय तक भी यही आस लगाये बैठी थी कि दामाद उसे भी मद्रास बुलायें।

जिस दिन दामाद मद्रास जानेवाले थे। उस दिन भोजनोपरांत हम सब चौपाल में बैठे हुए थे। दामाद अखबार पढ़ रहे थे कुर्सी पर बैठे!

'क्यों जी, सुनते हैं कि मद्रास में सड़क पर चलनेवाली गाड़ियाँ हैं?'—दामाद को संबोधित कर पूछा।

'ट्रामगाड़ियाँ हैं क्या?'—दामाद ने कहा।

'सड़क पर चलती हैं, तो उस पर चढ़ते कैसे?'

'देखने से ही मालूम हो जायगा!' मैंने कहा।

'तब तो मैं भी जाऊँगी।' शेषप्पा ने कहा। दामाद अनसुनी करके पत्रिका पढ़ने में निमग्न थे।

मैंने शेषप्पा को डाँटा। ऐसे विचार मन में भले ही रहें। परन्तु प्रकट नहीं करना चाहिए।'

'अरे, इसमें गलती ही क्या है!' शेषप्पा ने कहा। इतने में मेरी भानजी कमरे में प्रवेश करते अपने पति को देख वापस चली गई।

'बेटी, इधर आओ, यहाँ पर बैठ जाओ; भानजी शेषप्पा की बगल में आकर बैठ गई।

'मेरी बेटी आज जानेवाली है!' एक बार सिसकी भरने लगी। आँख में किरकिरी पड़ने का अभिनय कर आँखें पोंछने लगी।

'छुट्टियों में जरूर आ जाइए जी!'—दामाद को संबोधित कर कहा।

'जी, जरूर आयेंगे।' दामाद ने अखबार पढ़ते हुए ही उत्तर दिया।

शेषप्पा की आँखें इस बार डबडबा आईं। हम कुछ नहीं कहते तो वह फूट-फूटकर ही रो पड़ती। दामाद का मुँह अखबार की आड़ में था। शेषप्पा ने अपना मुँह मोड़कर आँखें पोंछ लीं।—अखबार के क्या समाचार हैं जी!' यह अनावश्यक प्रश्न था।

आँचल बिछाये करवट बदलकर लेट गई। इस बार उसने अपने दुःख को रोकने का बड़ा प्रयत्न किया, पर रोक नहीं सकी। वह लेटी ही रही न मालूम, वह कब सो गई। जब तक मैं बैठा रहा, यही सोचता रहा कि वह रो रही है। गाड़ी के समय तक वह सोती ही रही।

मैंने उसे जगाया। आँखें मलती उठ बैठी। मैंने बताया—'गाड़ी का समय हो गया है।' यह बात थोड़ी देर तक उसकी समझ में नहीं आई।

बैलगाड़ी आई। सारा सामान गाड़ीवाले ने गाड़ी में रखा। दामाद गाड़ी के पास जाकर खड़े हो गये। मेरी भानजी एक-एक कदम रखती माँ के पास आई।

'बेटी, जा रही हो?' शेषप्पा रो पड़ी। वह इस बात को भूल गई कि दामाद सामने ही हैं। छोटी बच्ची की तरह फूट-फूटकर रोने लगी। दामाद के जल्दी करने पर कि ट्रेन का समय हो गया है, अपनी बेटी को गाड़ी पर चढ़ने दिया। गाड़ी तो चली गई, लेकिन उसका रोना जारी था।

कभी-कभी मेरे मन में एक प्रश्न उठा करता है। मन के दुःख को बाहर प्रकट करना क्या अपराध है? उसका मेरे मन में एक ही जवाब है। दोष भले ही न हो, पर सभ्यता नहीं। तो ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए? इसका तो मेरे मन में कोई समाधान नहीं है!

'मातृदेवो भव !'

उस दिन सत्यवती का मन अपार हर्षोल्लास से तरंगित होने लगा। नित्यप्रति साधारण रूप में दिखाई देनेवाले दृश्य ही आज एक अपूर्व नूतन शोभा को लिये हुए हैं। पश्चिम दिशा में छिपते सूर्य, लाल-लाल मेघ, मौलसिरी के वृक्ष उसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हुए। महान् कार्य की समाप्ति पर होनेवाले आनन्द का वह अनुभव करने लगी। सत्यवती कल्पना भी नहीं कर पाई कि बहुत समय के बाद ही सही, उसके जीवन में एक अपूर्व आनन्द की घड़ी आनेवाली है !

सत्य ही तो है !

शंकरम् एक विशेष प्रकृति का व्यक्ति है। वह किसी से अधिक सम्बन्ध भी नहीं जोड़ता। केवल अपने काम में व्यस्त दिखाई देता। सैर-सपाटा करने नहीं जाता। सदा अपने कमरे में बैठा पढ़ा करता। बहुत समय तक सत्यवती को मालूम भी नहीं हुआ कि शंकरम् एक कुशल कहानीकार है·········

शंकरम् का परिचय कैसे हुआ, सत्यवती को अब स्मरण नहीं, पर इतना याद है कि उसका कारण सुन्दरम् है। उन दिनों सुन्दरम् भी कुछ लिखा करता और कभी-कभी उसकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पातीं। एक बार सुन्दरम् की एक कहानी छपी ! सुन्दरम् के नाम

एक अंक मिला। उसकी कथावस्तु साधारण है। कहानी के नायक और नायिका में परस्पर परिचय प्रणय का रूप धारण करता है और उन दोनों का विवाह हो जाता है। उस कहानी का नामकरण सुन्दरम् ने 'प्रणय-लीला' किया था।

सुन्दरम् का कहानी लिखना तो सत्यवती जानती है। लेकिन उसे यह मालूम नहीं था कि उसका भाई ऐसी सुन्दर कहानियाँ भी लिख सकता है। वास्तव में कहानियाँ कैसे लिखी जाती हैं और घटनाओं का चुनाव कैसे किया जाता है—इसकी कल्पना भी सत्यवती नहीं कर सकी। अपने भाई की कहानी को दो बार उलट-पुलट कर देखा। पन्ने उलटते-उलटते उसका ध्यान 'व्यवधान' नामक कहानी पर अटक गया। उसका लेखक कोई शंकरम् है। सत्यवती ने उसे भी अद्यान्त पढ़ डाला। कहानी समाप्त कर उसने गहरी साँस ली। उसकी कल्पना के विरुद्ध कहानी का अन्त हुआ। इसलिए थोड़ी देर के लिए वह स्तम्भित रही।

सत्यवती को अपने भाई की कहानी शंकरम् की कहानी के सामने फीकी मालूम हुई। उसने यह बात सुन्दरम् के सामने भी रखी। सुन्दरम् ने भी शंकरम् की कहानी का समर्थन करते हुए कहा— उस कहानी की योजना बड़ी सुन्दर है। ऐसा लिखना भी सबके लिए संभव नहीं।'

सुन्दरम् ने शंकरम् के साथ अपने परिचय का बड़प्पन व्यक्त करते हुए कहा—'शंकरम् अरसे से कहानियाँ लिखते आ रहे हैं। उनकी कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। कल उसने मुझे दो पुस्तकें भी दी हैं।'

'क्या कहा! तुम को दो पुस्तकें दीं! याने शंकरम् इसी शहर में रहते हैं?' सत्यवती ने पूछा।

'देखो, वह सामने के मकान में ऊपर के कमरे में रहते हैं ······।'

'ओह !' आश्चर्यचकित हो गई सत्यवती। उसको तो सत्यवती ने अनेक बार देखा है। देखने में कुछ विचित्र प्रकृति का मालूम होता है। हमेशा सिगरेट जलाते.........क्या उसने लिखी यह कहानी।

कारण तो बता नहीं सकते, पर सत्यवती को विश्वास नहीं हुआ कि शंकरम् ने ही यह कहानी लिखी है। कहानीकार शंकरम् और सामने के कमरे में रहनेवाले शंकरम् में किसी भी अंश में समानता नहीं दीखती। शायद उसके भाई ने हँसी-मजाक के लिए बात कह दी होगी। यह उसकी आदत भी है न !

तो एक बार आप उन्हें हमारे यहाँ क्यों नहीं बुलाते ? दोनों कहानीकार ठहरे !—सत्यवती ने कहा।

'मैं कुछ नहीं कह सकता। फिर भी एक बार बुलाकर देख लूँगा।' सुन्दरम् ने अपनी कहानी को सोलहवीं बार पढ़ते हुए कहा।

सत्यवती क्षण-भर अपने भाई की तरफ देखती रही। दूसरे क्षण शंकरम् कमरे की ओर देखकर 'हूँ' कहती अपनी वेणी को आगे की ओर लटकाये भीतर चली गई।

२

लिखने की आदत एक रोग-जैसी है। शंकरम् की सोहबत से सुन्दरम् भी इस रोग का शिकार हुआ इस रोग के लक्षण पहले से ही सुन्दरम् में विद्यमान थे। शंकरम् ने उसे चरम दशा को पहुँचाया। इससे किसी का विशेष नुकसान नहीं होनेवाला है। इस रोग से शंकरम् बिगड़ जायगा, या ज्यादा फैला तो सुन्दरम् भी। इन दोनों के बिगड़ने पर सीतापति विशेष ध्यान नहीं देते थे ! सत्यवती के बिगड़ जाने के लक्षण दिखाई देने लगे। यही समस्या सीतापति के मन की शांति को भंग करने लगी।

सत्यवती को सीतापति ने इण्टरमीडिएट तक पढ़ाया। आगे भी पढ़ाने के लिए वे अब भी तैयार हैं। लेकिन राघवम्मा ने जबरदस्ती सत्यवती की पढ़ाई बन्द कराई। उसका कहना था कि औरत को खाना बनाना, बरतन माँजना सिखा देने से काफी होगा। इस के लिए बी० ए० की डिग्री लेने की कोई आवश्यकता ही नहीं, ऐसी हालत में यूनिवर्सिटी की पढ़ाई के पीछे, जिसके बाबत में आदमी स्वयं गफले में पड़ा हुआ है, हजारों रुपये फूँक देना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं है। सीतापति को भी उनकी पत्नी की ये दलीलें अच्छी जँची। लेकिन वे किसी का भी समर्थन नहीं कर पाते हैं। सत्यवती पढ़ना चाहे, तो वे मना भी नहीं करते और इसके न पढ़ने से जबरदस्ती भी नहीं करते। यही उनका स्वभाव था।

सत्यवती ने साफ कह दिया - आगे मैं पढ़ना नहीं चाहती। उसका कारण न किसी ने उससे पूछा और न सत्यवती ने ही कहा। राघवम्मा को कुछ संतोष हुआ। सीतापति भी अपनी पत्नी के रोज के झगड़े से मुक्त हुए।

लेकिन इससे सीतापति के मन को शांति नहीं मिली। सत्यवती की पढ़ाई के बन्द किये एक सप्ताह भी पूरा बीत नहीं पाया था कि उसके विवाह की तैयारी करने पर जोर देने लगी। राघवम्मा का तर्क था कि जब सत्यवती की सब सखियाँ दो-तीन बच्चों की माताएँ बन गईं, तो अपनी लड़की को घर में रखने से लोग आखिर क्या कहेंगे और क्या सोचेंगे? सीतापति ने इस झंझट से छुट्टी पाने के बिचार से पत्नी की हाँ में हाँ मिलाया।

दो महीने बीत गये। सत्यवती की शादी नहीं हुई। कम-से-कम उसके प्रयत्न भी न होते देख राघवम्मा ने पुनः याद दिलाई।

सीतापति ने उसे समझाया कि इधर-उधर की व्यर्थ दौड़-धूप करने से कोई काम नहीं बनता है। समय पर सब कुछ हो जाते हैं। इस पर राघवम्मा बिगड़ उठी—'मुझे क्या पड़ा है, अपनी बेटी की शादी करना चाहो तो उसके हाथ पीले कर दो, नहीं तो तुम्हारी मर्जी !'

सीतापति को अन्त में अपनी पत्नी के साथ सुलह करनी ही पड़ी। दोनों ने बड़ी देर तक चर्चा की और अन्त में अगले माघ में सत्यवती की शादी करने का निश्चय किया।

उस निश्चय को सत्यवती ने कहाँ तक स्वीकार किया, कोई नहीं जानता। लेकिन उसने अपने मन की बात भी कभी प्रकट नहीं की। उसको भली भांति मालूम था कि जिस दिन वह अपना विचार प्रकट करेगी, उस दिन घर में कुछ-न-कुछ झगड़ा अवश्य उपस्थित होगा। यदि ऐसा समय भी आया, तो भी सत्यवती को पूरा विश्वास था कि सुन्दरम् उस के पक्ष का जरूर समर्थन करेगा; क्योंकि सुन्दरम् और शंकरम् दोनों बड़े अच्छे घनिष्ठ मित्र हैं। दोनों आजकल एक ही कमरे में रहते हैं। सत्यवती का शंकरम् से प्रेम करना सुन्दरम् को अवश्य मालूम हुआ होगा। उन दोनों को एकांत में वार्त्तालाप करते सुन्दरम् ने एक-दो दफे देख भी लिया था। इससे वह डर भी गई थी। लेकिन सुन्दरम् ने कुछ नहीं कहा था। इसका मतलब यही हुआ कि सत्यवती का शंकरम् से विवाह करना सुन्दरम् को भी पसन्द है।

पिताजी को भी समझाया जा सकता है, पर माता को ? पढ़ना ही उन्हें पसंद नहीं था, शंकरम् से शादी करना उनको पसंद कैसे हो ! लेकिन अम्मा के न मानने से क्या हुआ ? पिताजी ने कई बार माता की इच्छा के विरुद्ध साहस के साथ अनेक कार्य जो किये थे ! यह काम क्यों नहीं कर कसते ?

परिस्थिति अनुकूल होती तो कह नहीं सकते कि परिणाम क्या हुआ होता ? पर पिताजी को ही यह संबंध पसंद नहीं आया। सोलह आने अपने पक्ष के समर्थक भाई भी समय पर मौन धारण कर बैठा रहा। पूछने पर लंबा-चौड़ा जवाब दिया, जो किसी की समझ में नहीं आया। उसका तर्क था--

"जो व्यक्ति केवल प्रेम करने लायक हैं, वे विवाह के योग्य नहीं होते। यह समाचार तुम नहीं जानतीं, इसीलिए तुम शंकरम् से विवाह करना चाहती हो। शंकरम् आदर्श पति हो सकता है, लेकिन योग्य गृहस्थ नहीं।...तुम देख रही हो न, वह कैसा आलसी है ! कुछ काम-धंधा नहीं, हमेशा कागज पर कलम लेकर कुछ घसीटता रहता है। कुछ रुपये हाथ लगे, तो खा लेता है, नहीं तो उपवास किया करता है ! क्या प्रेम करने के लिए तुम्हें वही एक मिला। शंकरम् के पास यश है; प्रतिष्ठा है, पर पैसे नहीं। मैं नहीं जानता कि तुम उसके साथ विवाह करके क्या सुख भोगनेवाली हो ! अच्छी कहानियाँ लिखनेवाले कहानीकार के रूप में हम शंकरम् का आदर अवश्य करेंगे, लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि सुन्दर कहानियाँ लिखना भी प्रेम करने के लिए योग्यता कहलाये ! मुझ से पूछा जाय, तो मैं यही कहूँगा कि शंकरम् से विवाह करने की कल्पना तक नहीं करनी चाहिए। यदि मेरी सलाह नहीं मानती, तो तुम्हारी इच्छा ! लेकिन इतना तो जरूर याद रखना कि तुम इससे जान-बूझकर घोर पश्चात्ताप करनेवाले अवसर को अपने सर पर मोल ले रही हो ! तो भी यह समस्या केवल तुम्हारे जीवन से संबंधित है। मैं केवल सलाह-मात्र दे सकता हूँ, आदेश नहीं।"

सत्यवती क्षण-भर चकित रही। उसने कभी कल्पना तक नहीं की थी कि सुन्दरम् भी कभी ऐसा कहनेवाला है ! उसकी कल्पना और विश्वास से आधार एक-एक करके हिलते जा रहे थे। फिर भी सत्यवती

अधीर नहीं हुई। उस सयय उसके दिमाग में कई विचार उठे। वह सोचने लगी कि इस विशाल विश्व में वह एकदम अकेली है, और उसके चारों तरफ शत्रु ही शत्रु हैं। इन सभी शत्रुओं को पराजित करने पर ही उन्हें अपनी शक्ति का परिचय होगा। उसने तर्क तो किया, पर जब वे सुनते और समझते ही नहीं हैं, तो तर्क करना भी अच्छा नहीं समझा।

३

शंकरम् अपने दोनों पैरों को बालू में फैलाकर दोनों हाथों को पीछे की ओर टिकाये, समुद्र की ओर देख रहा है। क्षण-भर अपना सर झुकाये, धीरे-से शंकरम् के नेत्रों में देखती, सत्यवती ने संभाषण प्रारंभ किया।

'हाँ, मुझे मालूम है।'

'तो भी तुम सुन्दरम् से बेकार क्यों झगड़ा करती हो सत्या!' शंकरम् ने कहा।

'झगड़ा नहीं किया, केवल वाद-विवाद हुआ। सचमुच झगड़ा ही कर बैठती तो यहाँ तक नौबत नहीं आती!' सत्यवती ने जवाब दिया।

'यह सब असल में हुआ ही क्यों? मुझसे पूछा जाय तो मैं यही कहूँगा कि इस में दुःखी और व्यथित होने की कोई जरूरत नहीं थी! तुम्हारी अच्छाई और बुराइयों पर मैं बोल नहीं रहा हूँ। तुम पर मेरा संदेह भी नहीं है। हो सकता है, तुम्हारे भाई के कथन में ही सत्य हो! उस पर तुम विचार क्यों नहीं करती? सुन्दरम् के कथनानुसार कीर्ति और प्रतिष्ठा सुखमय जीवन बिताने में सहायक नहीं होतीं। केवल धन ही उपयोगी हो सकता है···बहुत समय के बाद ही सही, मैं अपने हृदय की भावनाओं को तुम्हारे सामने रख रहा हूँ। मैं बड़ा निर्धन हूँ।

अपना पेट भरने में स्वयं असमर्थ हूँ। ऐसे अभागे से विवाह कर तुम सुख पानेवाली हो मेरी समझ में नहीं आता !" सत्या की आँखों में देखते शंकरम् ने कहा।

'समझ में किसे नहीं आता ? तुम्हें ?' सत्यवती ने म्लान हँसी हँसती कहना शुरू किया —'तुम्हारी बात तो मैं कह नहीं सकती, पर मुझे पूर्ण विश्वास है कि अवश्य मैं सुख का अनुभव करूँगी। हो सकता है। मेरा विश्वास भ्रमपूर्ण हो। लेकिन मैं इसी को सत्य मानती हूँ। इस भ्रम को सत्य साबित करने का मुझे अवकाश क्यों नहीं देते ?'

शंकरम् जोर से हँस पड़ा। सत्या चकित रह गई।

'तबतक हो सकता है, सभी अवसर हाथ से छूट जाय ! उसके बाद तुम्हें साबित करने का अवकाश ही नहीं मिले···ओह ! क्यों सत्या ! क्या बात है ! मैंने तुम्हें कहा ही क्या ? आँसू क्यों गिराती हो ? दुःखी क्यों होती हो ?' सांत्वना के शब्दों में शंकरम् ने कहा।

सत्यवती ने कोई जवाब नहीं दिया।

शंकरम् कहने लगा मैंने सारी स्थिति तुम्हें समझाई। मैंने जो कल्पना की है, वही तुम्हारे सामने रखा। संभवतः मेरी कल्पना गलत भी हो सकती है। इसका निर्णय भी अभी हम नहीं कर पायेंगे।···मुझे, यह मत सोचो कि मैं तुम्हें चाहता नहीं हूँ। समय आ गया है, इसलिए अपने विचार बता रहा हूँ। · '

सत्यवती ने सजल नेत्रों से शंकरम् के मुखमण्डल को देखा। शंकरम् ने गहरी साँस ली।

सत्यवती ने पूछा —'अब मैं तुम्हारा अभिप्राय जानना चाहती हूँ।'

'मेरे अभिप्राय को जानने के पूर्व तुम्हें इस बात के लिए तैयार रहना चाहिए कि मेरा विचार तुम्हारे अभिप्राय के विरुद्ध हो, तो क्या करोगे ?' शंकरम् ने बालू में लकीरें खींचते धीरे-से कहा।

यह बात कहते समय सत्या के मन में होनेवाले संक्षोभ को न देख सकने की हालत में शायद शंकरम् ने सर झुकाया था।

'विरुद्ध होगा! आखिर तुम यह क्या कहते हो? मैं कभी सोच भी नहीं सकती कि तुम्हारा अभिप्राय मेरे विचारों के विपरीत होगा!'

'मैं यह नहीं कहता कि तुम सोच रही हो। अगर दुर्भाग्यवश हम दोनों के विचार मेल न खायें, तो क्या करना होगा, यही मैं पूछ रहा हूँ।....'पच्' कोई प्रयोजन नहीं। मेरे संकेत को तुम भाँप नहीं रही हो और भाँपने का प्रयत्न तक नहीं कर रही हो, सत्या! सुनो, क्या मुहब्बत करने के लिए तुम्हें मुझ-जैसा अभागा ही मिला? बात बढ़ने के पहले तुम्हें यह भी सोचना चाहिए था कि मेरे प्रति तुम्हारी जो सद्भावना है, वह तुम्हारे प्रति मेरे मन में है कि नहीं ......।'

'सोचा क्यों नहीं? खूब सोचा। सोचने के उपरान्त ही इस निर्णय पर पहुँच गई हूँ।'

'तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारा मन किसी गंभीर विषय पर सोचने में असमर्थ है। सोचने की क्षमता होती, तो तुम इस निर्णय पर न पहुँचतीं। यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि तुम्हारे मुँह से प्रकट होने के पूर्व तक मेरे मन में तुम से विवाह करने का विचार तक पैदा नहीं हुआ था। तुम्हारे विचारों से मालूम होता है कि तुम बहुत दिनों से इस समस्या पर विचार करती आई हो। खूब मंथन करने के बाद ही तुम इस निर्णय पर पहुँच चुकी हो। मुझे भी एक निर्णय पर पहुँचने के लिए कुछ अवधि जरूर चाहिए।'

सत्यवती के मन में कोई अज्ञात भय सर्प की भाँति फुफकार मारने लगा। शंकरम् समय पर चुपके-से निकलता जा रहा है। इसलिए सत्यवती ने अंतिम फैसला करने का निश्चय किया।

शंकरम् ने पुन: प्रारम्भ किया 'साफ बात यह है, कि हम दोनों के बीच बहुत बड़ा अन्तर है। तुम मेरी स्थिति पर पहुँच नहीं सकती और मैं तुम्हारे स्तर को पा नहीं सकूँगा। इसीलिए मुझे संदेह हो रहा है कि हमारा दाम्पत्य बहुत समय तक दृढ़ नहीं रह सकेगा। ऐसा संदेह हम में उत्पन्न ही नहीं होना चाहिए था, उत्पन्न होने के बाद भी यदि हम दाम्पत्य के सूत्र में बँध जाने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो इससे बढ़कर कोई भारी भूल नहीं हो सकती।'

'क्या तुम्हारा यही अभिप्राय है ?' सत्यवती का कंठ गद्गद हो उठा और उसके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह उमड़ पड़ा।

शंकरम् ने कुछ नहीं कहा। हाँ, सर हिलाकर संकेत किया कि मानों उसका वही अभिप्राय है।

''मैंने क्या-क्या सोचा ? कैसे सपने देखे। आखिर तुम्हारे मुँह से ये बातें सुन रही हूँ। लेकिन स्मरण रखना कि तुम अवश्य एक बार पश्चात्ताप करोगे। यदि तुम्हारे कारण एक नारी की आत्महत्या तुम्हें पसंद हो··· ।'

'क्या कहा ?' शंकरम् चौंक पड़ा।

सत्यवती मौन रही।

'क्या यह बात तुम हृदय से कह रही हो, सत्या ?' शंकरम् ने उसके मुखमण्डल की ओर देखते प्रश्न किया।

इस बार भी सत्यवती मौन रही। शंकरम् थोड़ी देर तक गंभीरता-पूर्वक सोचने के बाद जोर से हँस पड़ा। और धीरे से सत्यवती का हाथ दबाते हुए कहा—

'अब तुम्हारी परीक्षा लेने की जरूरत नहीं। मेरे जो भी संदेह थे, सब दूर हो गये। उनकी निवृत्ति के लिए ही मैं अबतक तुम्हें सताता रहा।······

पहले तो सत्यवती विभ्रांतचित्त हो गई। थोड़ी देर के बाद शंकरम् की ओर उसने कुछ विचित्र ढंग से देखा।

'तुम में जरा भी सोचने की शक्ति होती, तो तुम मेरे अभिप्राय को कभी समझ गई होती। सामने के मकान से जब मैं तुम्हारे घर में आ गया, तभी तुम्हें मुझे समझ लेना चाहिए था। मुझे समझने में तुम्हें इतने दिन लगे। मैं भी इस विषय को बहुत दिनों से तुम्हें बताना चाहता था। लेकिन तुम्हारे अभिप्राय को जाने विना व्यक्त करना उचित नहीं समझा। जो भी हुआ, हमारी भलाई के लिए ही हुआ। अब हम लोगों का कर्त्तव्य क्या है! तुम्हारे माता-पिता हमारे विवाह को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। सुन्दरम् को भी पसन्द-सा नहीं लगता है।' शंकरम् ने कहा।

सत्या ने क्षण-भर कुछ स्मरण करने का प्रयत्न कर हँसते हुए कहा 'तुम्हारी 'प्रणय-लीला' कहानी पढ़ी। उसके नायक और नायिका भी इसी तरह की समस्या में उलझ जाते हैं। तुमने उस कहानी की पूर्त्ति कैसे की?''

'प्रणय-लीला', माने . . . ओहो . . वह कहानी हाँ! तुमने समय पर याद दिलाई। उसका अन्त बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। नायक और नायिका किसी दूर प्रदेश में जाने का निश्चय करते हैं। नायिका के शरीर पर आभूषण थे ही, साथ ही उसने पाँच हजार रुपये की नकद जमा कर ली। और, दोनों एक दिन रात्रि को प्रशांत वातावरण में, शुभ्र ज्योत्स्ना में किसी दूर देश में चले जाते हैं, है न?'

सत्यवती मन्द हास कर उठी!

'समस्या का हल तो हो गया। अब चलें सत्या! दोनों अपने-अपने प्रयत्न में रहेंगे! यही अंतिम निश्चय है। मेलगाड़ी के समय, ठीक

रात के दो बजे, मेरे कमरे का एक दरवाजा आधा खुला रहता है······'
शंकरम् ने कहा।

सत्या उठने का उपक्रम करने लगी। शंकरम् ने उसका हाथ पकड़ कर ऊपर उठाया। सत्या हँस पड़ी। शंकरम् भी मुस्करा उठे!

४

सत्या ने पूरा विश्वास किया था कि उनका निर्णय अक्षरशः अमल होगा। वह हद से अधिक प्रसन्न रही। काम का बहाना करती वह अपने गहनों को ठीक करने लगी। कहानी की भाँति पाँच हजार तो उसके हाथ न लगे, लेकिन जो भी मिला, संग्रह कर रखा। एक दो बार उसने सुन्दरम् के कमरे की ओर देखा। वह भी सामान ठीक कर रहा था।

उस दिन रात्रि में सत्या को निद्रा नहीं आई। बार-बार वह घड़ी की ओर देखने लगी। एक बार देखा—नौ बजा था, दूसरी बार सवा नौ! यह कमबख्त घड़ी कब एक बजानेवाली है!

बड़ी प्रतीक्षा के बाद एक बजा! सत्या का कलेजा धड़कने लगा। खाट पर से उठी, संदूकची हाथ में लेकर शंकरम् के कमरे की ओर आगे बढ़ी। दरवाजा खोलकर देखा, उसका सन्देह ठीक निकला। शंकरम् वहाँ नहीं हैं। इस पर सत्यवती को आश्चर्य नहीं हुआ। फिर भी धम्म से गिर पड़ी। उसे खूब रोने की इच्छा हुई। लेकिन उसकी कौन-सी इच्छा अब तक पूरी हुई थी, जो अब पूरा न होने से विशेष दुःख हो!

सवेरा हुआ। शंकरम् के गायब हो जाने के कारण सब को आश्चर्य हुआ। सब के साथ सत्या ने भी आश्चर्य प्रकट किया।

× × ×

इससे अधिक सत्या कर ही क्या सकती थी। अच्छा हुआ कि उस का भेद नहीं खुला। शंकरम् की बातों पर उसे विश्वास हो गया था।

वे सभी सपने अब टूट गये हैं। शंकरम् एक कायर की भाँति भाग गया है। इतने वर्षों के उपरान्त उस विषय पर सोचने से उसे लगा कि शंकरम् का भाग जाना ही अच्छा था, वरना उसे ऐसा बढ़िया सम्बन्ध कहाँ मिलता और ऐसे सुख ही कब प्राप्त होते······।

लड़की देखने जब राममूर्त्ति आये, उस समय स यवती का उन पर कोई विशेष अभिप्राय नहीं था। शंकरम् की करतूत ने उसके हृदय को आहत कर दिया था, इसलिए उसमें एक प्रकार की विरक्ति की भावना पैदा हो गई थी। जिसे वह पूर्ण हृदय से चाहती थी, वही शंकरम् नहीं मिला, और अपना नहीं हो सका, ऐसी हालत में किसी से भी शादी करे, कोई विशेष अन्तर नहीं है। यही कारण है कि उसने विना प्रतिवाद के उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया।

अब तो उसे किसी बात की कमी नहीं। पति अच्छे ओहदे पर हैं। घर-भर में नौकर-चाकर हैं। मनपसंद वस्त्र पहनती है। उसका जीवन आराम से बीत रहा है! इस बीच में कई बार शंकरम् का उसे स्मरण आया। उसकी स्मृति-मात्र से वह किसी अभाव का अनुभव करती और थोड़ी देर के लिए उसका हृदय विकल हो उठता।

दिन बीतते गये। घाव भी भर गया। लेकिन आज अचानक शंकरम् दिखाई दिया। वह जल्दी उसे पहचान नहीं सकी। कितना बदल गया है। पहले वह दरिद्र था, अब तो लखपति-सा दिखाई दे रहा है। हाथ में हीरे की अंगूठियाँ, मूल्यवान् वस्त्र, और दस-पन्द्रह हजार की मोटरकार है। शंकरम् ने, पहले जब उसका नाम लेकर पुकारा, तब वह चौंक पड़ी। पीछे घूमकर देखा, तो शंकरम् मंद हास कर रहा था। शंकरम् के नाम बताने तक वह उसे पहचान नहीं पाई।

'इतना बदल गई हो, सत्या?' कार से उतरकर शंकरम् ने पूछा।

इस बात के सुनने पर उसे पूर्व की सारी बातें एकदम याद आ गईं, वह अपने दुःख को रोक नहीं सकी। बीच सड़क पर उसे कोई रोते देखे, तो क्या समझे। जबरदस्ती उसने अपने मन पर काबू किया।

'सकुशल तो हो ना सत्या?' शंकरम् ने पूछा।

तबतक सत्यवती सोचती थी कि वह सुखी है और अनेक लोगों की अपेक्षा वह सुखमय जीवन बिता रही है। लेकिन इस प्रश्न-मात्र से उसका विचार बदल गया। उसे लगा कि सचमुच उसे सुख नहीं मिल रहा है। उसे संदेह हुआ कि वास्तविक सुख को पहचानने और पाने की असमर्थता में, उपलब्ध वस्तु को ही वह सुख तो नहीं समझ रही है। शंकरम् दिखाई नहीं देता, तो सत्यवती के मन में यह सन्देह भी पैदा न हुआ होता।

बहुत समय के बाद शंकरम् से मिलने पर उसके मन में सारी कथा व्यक्त करने की इच्छा पैदा हुई। इसीलिए शायद वह तुरन्त शंकरम् की कार में बैठ गई और कहा – 'अब जाने दो।'

धूल उड़ाती मोटरकार सड़क पर दौड़ती जा रही है। आदमी, वृक्ष, गाड़ियाँ आदि सब पीछे की ओर सरकते जा रहे हैं। शंकरम् किसी दिशा की ओर देखे बिना कार चला रहा है। सत्यवती पगली-सी शंकरम् की ओर देखती जा रही है।

वृक्षों के पीछे सुन्दर ढंग से शाम ढल गई। अंधकार से आवृत बादल बोझीले बनकर नशे से झूमने-से लगे। एक छोटे-से धक्के के साथ मोटरकार रुक गई। शंकरम् ने पहले उतरकर दरवाजा खोला। सत्या ने धीरे-से नीचे कदम रखा। दोनों सड़क को पारकर खेतों की मेड़ों पर चलने लगे। घास चरनेवाली गायों ने पल-भर के लिए चरना छोड़ दोनों

की ओर देख सर झुकाया। घास और हरी दूब से छोटे से कीड़े आहट पाकर उछलने लगे। दोनों एक समतल स्थान पर बैठ गये।

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। दोनों अपने-अपने विचारों में मग्न रहे। वह सन्नाटा असहनीय था। पहले शंकरम् ने ही मौन भंग करते हुए प्रारम्भ किया।......

शंकरम् अब सिनेमा के लिए कहानियाँ लिखने का धंधा कर रहा है। एक-एक पिक्चर के लिए कम-से-कम पाँच-छह हजार मिल जाते हैं। उसकी लिखी फिल्मों में शतदिनोत्सव मनानेवाली वही पहली थी, इसलिए वह भी अभिनेताओं के साथ विजयवाड़ा आया हुआ है। संभाषण के सिलसिले में उसने बताया कि सत्या का इस शहर में रहना उसे कतई मालूम नहीं, वैसे ही अचानक मुलाकात हो गई।

सत्या थोड़ी देर तक मौन रही। बोलने का उसने प्रयत्न किया। लेकिन उसके मुँह से बोल नहीं फूटे, कोई अज्ञात दुःख उसे विकल बना रहा था।

'तो तुम उस घटना को अभी तक भूल नहीं पाई?'

——शंकरम् ने पूछा।

सत्यवती ने गहरी साँस ली—'भूलना तो मैं असंभव समझती हूँ। आज तक मैं यही सोच रही थी कि भूल गई हूँ और सुखी हूँ। तुम नहीं मिलते तो आगे भी यही मानती रहती। तुमने भरे घाव को पुनः कुरेद दिया है।'

शंकरम् एक बार सत्या की ओर आश्चर्यचकित हो देखकर मौन रहा।

'उस दिन तुमने मुझे धोखा क्यों दिया? झूठ क्यों बोले?' सत्या ने पूछा।

'मैंने जो भी किया, जान-बूझकर ही किया। वह जमाना ही ऐसा था कि मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं था। मैं अपना पेट भरने में असमर्थ था।…… तुम्हारे अभिप्राय के अनुसार हम दोनों कहीं भाग खड़े हुए होते, तो दोनों का सर्वनाश हुआ होता। जान-बूझकर तुम्हारे जीवन को बरबाद करने की अनिच्छा से ही भाग गया था। तुम पर अपार प्रेम था, इसीलिए तुम्हें दुःख देने की इच्छा नहीं हुई। तुम्हारी कुशलता के लिए ही मैंने वैसा किया। उस समय मैं आज की स्थिति में होता, तो अवश्य तुमसे विवाह करता। उस समय मुझे ये अवकाश नहीं थे, पर तुम थीं, किन्तु आज सभी सुख-सुविधा एवं अवकाश हैं, पर तुम नहीं हो, क्या फायदा!' शंकरम् ने कहा।

अंधेरा हो चला था। दूर पर विजयवाड़ा में बिजली की रोशनी सड़कों पर छाई हुई थी। दो मोटरकार अपने प्रकाश को फेंकती सड़क पर जा रही थीं। जुगनू चमक रहे थे।

सत्या ने तिनका तुनकते हुए कहा—'तुम्हारी लिखी एक फिल्म को देखा है, शंकरम्!' सत्या ने शंकरम् के मनोभावों को पढ़ने के विचार से उसकी ओर देखा। शंकरम् ने केवल एक गहरी साँस ली!

''पुनर्मिलन' नाम अक्षरशः उचित है। उस सिनेमा के नायक और नायिका भी हम-जैसे बिछुड़ गये हैं। नायक प्रवास में जाकर विशेष धनार्जन कर पुनः वापस लौटता है। वह सोचता है कि इतने समय के उपरांत उसकी प्रेमिका उसे अस्वीकार करेगी। वह डर भी जाता है। लेकिन वह आज तक उसके साथ वैसा ही प्रेम करती आ रही है। इसलिए वह अपने सर्वस्व को त्याग कर उसे अपना प्रियतम बना लेती है। शंकरम्! तुमने कितना अच्छा लिखा है। उस सिनेमा को देखते ही हमारी सभी पूर्वस्मृतियाँ ताजी होने लगीं; मुझे लगा कि ट्राजेडी बनाते, तो अच्छा होता। लेकिन अब सोचती हूँ कि उन दोनों का मिलन

कराना ही अच्छा है !" शंकरम् के हाथ को पकड़कर सत्या ने कहा। लेकिन जाने उसका हाथ काँप रहा था।

'अब चलें ?' — शंकरम् ने पूछा।

सत्या चुपचाप उठ खड़ी हुई।

'नायक अर्धरात्रि के समय कार-सहित उसकी प्रतीक्षा में नायिका के दरवाजे पर रहेगा ! नायिका चुपचाप दरवाजा खोल बाहर आयगी, और कार पर बैठ जायगी, नायक कार चलायगा, दोनों आनन्द के साथ गाते, बिछुड़े अनुराग जगाते…'

फिर दस मिनट में मोटरकार शहर में थी ! 'अब मैं उतर जाती हूँ शंकरम् ! लो यह मेरा पता है !' सत्या ने कहा।

'धन्यवाद !' शंकरम् ने उत्तर दिया।

५

सत्या घर पहुँची। जल्दी-जल्दी सामान ठीक करने लगी। उसके मुँह से अप्रयत्न ही गीत गूँजने लगा। 'बाबू' (बेटे का प्यारा नाम) सो रहा था। पल-भर निर्निमेष उसकी ओर देखती रही। मानों किसी बोझ को उतारने की कल्पना करने लगी। खाने बैठी, लेकिन इच्छा नहीं हुई। अलमारी से अपने सभी आभूषण निकालकर पेटी में रख दिया। सत्यवती में एक अपूर्व उत्साह हिलोरें मारने लगा। अपने जीवन पर उसे घृणा हुई।

अब वह सच्चा जीवन बिताने जा रही है। आज तक का जीवन जीवन की परिभाषा में नहीं आता था। उसने अपने-आप को धोखा दिया, पति को भी। अब वह सुखमय जीवन बिता सकेगी। इस 'मायाजाल' से, आज ही सही, मुक्ति तो मिल रही है।

सत्यवती अपने काम में व्यस्त थी। इतने में उसके पति राममूर्त्ति एक बच्चे को लेकर पहुँचे ! राममूर्त्ति को देख सत्या हठात् उठ खड़ी हुई।

पति की ओर उसने घृणा की दृष्टि से देखा। प्रतिदिन सुन्दर दिखाई देने-वाले राममूर्त्ति आज उसे शैतान की तरह दीखने लगे।

'बड़ी देर हो गई सत्या! पहले ही आना चाहता था, बीच में इस लड़के की झंझट आई!' राममूर्त्ति कमीज उतारते हुए बोले। लड़के की ओर देख 'क्यों रे मधू! खड़े क्यों हो? खाट पर बैठो' कहा। सत्या ने मन-ही-मन सोचा, जो भी होगा। थोड़ी देर के लिए ही तो हैं। अपने मन को उसने सांत्वना दी।

तौलिया पहनते राममूर्त्ति ने पूछा—'गरम पानी है? नहीं तो जाने भी दो, आज के लिए केवल पैर धो लूँगा। मधू! आओ, हाथ मुँह धोओ।' सत्या की ओर देख यह कहते पिछवाड़े की ओर गया कि 'अभी आते हैं खाना परोसो।'

राममूर्त्ति जल्दी-जल्दी खा रहे हैं। मधू को खाने में बड़ी तकलीफ हो रही है। तीन-चार दाने मुँह में लेकर पानी की खोज में इधर-उधर देखा। राममूर्त्ति के पास धरे बड़े गिलास को प्रयत्न के साथ उठाकर मुँह के सामने रखा ही था कि सारा पानी थाली में आ रहा! उसकी कमीज भींग गई। गिलास को छोड़ वह बालक फूट-फूटकर रोने लगा।

'सत्या! उस पीढ़े को जरा इधर खींचो, आज मेरी थाली में ही खायगा।' फिर लड़के को पुचकारते—हुए 'बेटा रोओ मत! देखो, यह खा लो! ऊँ, मुँह खोलो तो! यह कौर लो!' कहते रहे!

'मुझे नहीं चाहिए। मैं नहीं खाऊँगा?' मधू रोते हुए कहने लगा।

'तुम्हें मिठाई दूँगा। मेरे बेटे हो न! सत्या!···मधू के खाने के बाद चॉकलेट दो!'

'ऊँ, मै नहीं खाऊँगा!' बालक ने कहा।

'तो तुमको और क्या चाहिए !' सत्या ने कुछ क्रोध से कहा! मधू घबराहट के साथ सत्या की ओर देखने लगा। फिर राममूर्त्ति के समीप तक सरककर बोला – 'आँ-आँ, मुझे अम्माँ चाहिए !'

'आप भी कैसे हैं जी, इस लड़के को पकड़ लाये। समझाने-बुझाने पर भी वह नहीं खाता है, क्या फाका ही सोयेगा। अब फिर इस रात के समय उसे उसकी माता के पास ले जाना होगा। यह झंझट ही क्यों मोल ले रखा है !' सत्या ने कुछ नाराजगी से कहा।

राममूर्त्ति उठ खड़े हुए। हाथ-मुँह धोकर सत्या से बोले— 'उसे थोड़ा-सा गरम दूध, हो तो पिलाओ। मेरा बिछौना बिछा लो। आज यह मेरे पास ही सोयेगा !

सत्या ने आश्चर्य से पूछा —'क्यों ?'

विना कुछ बोले राममूर्त्ति ने सिगरेट सुलगाई।...

थोड़ी देर में सत्या भी रसोई के बरतन ठीक-ठाक कर आ गई। तुरंत राममूर्त्ति ने पुस्तक बंद कर कहा -- 'सत्या ! अब भी तुम्हारे ऊपर काफी भार है। कल मैं तुम पर एक और बोझ लादने जा रहा हूँ। मधू अब यहीं रहेगा। इसे तुम अपना दूसरा पुत्र मान लो। मैं वैसा वचन देकर ही राजाराव के यहाँ से इसे ले आया हूँ।'

सत्या ने प्राश्निक दृष्टि से राममूर्त्ति की ओर देखा।

'जो होना है, सो हो गया है ! उस पर विचार कर कोई कुछ नहीं कर सकनेवाला है ! लेकिन सत्या, मुझे तो केवल इसी बात का बहुत बड़ा दुःख है कि आखिर मनुष्य इतने मूर्ख क्यों होते हैं ? मैं यह नहीं मानता कि एक के अपराध का दण्ड दूसरा व्यक्ति भोगे। लेकिन अब हुआ वही है !' राममूर्त्ति ने धीरे-से मधू की पीठ पर हाथ फेरते कहा।

'क्या हुआ है, बताओ तो !' सत्या ने पूछा। राममूर्त्ति ने सर हिलाकर कहना प्रारंभ किया —

'प्रत्येक व्यक्ति को हर काम करने का अधिकार है। उस अधिकार का वह उपयोग भी कर सकता है। लेकिन उसी समय जरा विवेक के साथ सोचे, तो अनेक के जीवन धूल में मिलने से बच जाय।' फिर इधर-उधर टहलते कहने लगे --"किसी ने सोचा तक नहीं था कि अनसूया ऐसा काम कर बैठेगी। कहा जाता है कि उसका पुराना प्रेमी इस शहर में आया है। उसके साथ वह पिछली रात को भाग गई है। यह लड़का सुबह से ही अपनी माता के लिए जमीन-आसमान एक करते रो रहा है। इसके दुःख को मैं देख नहीं सका। इसलिए राजाराव को समझाकर इसे मैं अपने साथ ले आया हूँ! हम चाहे जितने प्यार के साथ पालें-पोसें, वह अपनी माता को भूल नहीं सकता है। वास्तव में उसे जो चाहिए, वह केवल अनसूया ही जान सकती है, हम और तुम नहीं! कल यह बड़ा हो जायगा और दस आदमियों के बीच जब इसके कान में यह बात पड़ेगी कि यह उसी भागी हुई औरत का बेटा है, तब इसके मन में कैसा क्षोभ पैदा होगा। इस पर अनसूया जरा भी विचार करती, तो वह संभवतः भाग जाने का प्रयत्न नहीं करती! आज यह बालक अनाथ है! हम चाहे इसे सभी सुख-सुविधाएँ प्रदान करें, आराम पहुँचाएँ, खाना-कपड़े दें, प्यार के साथ देखें, लेकिन उसकी 'अम्माँ' नहीं दे सकते! उस अभाव की पूर्त्ति हम नहीं कर सकेंगे और वह पूरा होनेवाला भी नहीं।"

चौंककर राममूर्त्ति ने देखा। सत्यवती अपने दोनों हाथों से मुँह ढककर फूट-फूट रो रही है।

'यह तुम क्या कर रही हो सत्या? रोती क्यों हो?' राममूर्त्ति ने उसके पास पहुँचकर सांत्वना के शब्दों में कहा।

सत्यवती ने बात तो प्रकट नहीं की, लेकिन वह अपने पति के हृदय में मुँह छिपाकर सिसकती रही।

'इस दुनियाँ में नित्य प्रति ऐसी अनेक घटनाएँ हुआ करती हैं, सत्या ! उन्हें सुनकर दुख और सहानुभूति प्रकट करने के सिवा हम कुछ नहीं कर सकते ।······जाओ, लेट जाओ ! तुम्हें मैंने अनावश्यक दुःखी बनाया । मैंने नहीं सोचा था कि मेरी ये बातें तुम्हें विह्वल बनायेंगी ।' राममूर्त्ति ने कहा ।

सत्यवती का चेहरा एकदम लाल हो गया । उसकी आँखें आग के शोलों की भाँति जल रही थीं । उसकी सारी देह काँप रही थी । वैसे ही काँपती मधू के पास पहुँची, उसे कन्धे पर लेकर, अपने कमरे में आई । 'बाबू' गहरी नींद में है । मानों सपने में वह किन देवताओं के दर्शन कर रहा हो, उसके मुखमण्डल पर अपूर्व मंद हास फूट रहा था । मधू को भी बाबू की बगल में लिटाया । उन दोनों बालकों को सत्या एकटक देखती रही । उसके मन में उफान की भाँति दुःख सीमा को लाँघकर फूट पड़ा ।

'नहीं, नहीं, कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता ! मेरा 'बाबू' मातृहीन कभी नहीं हो सकता ।'

अपना कोई नहीं ?

'पंडितजी अभी तक नहीं आये ?' पूछते हुए अलीखाँ नायुडू की बगल में थोड़ी दूर पर बैठ गया। नायुडू ने यूँ ही सर हिलाया।

'मैं सोच रहा था कि आज मैं ही देर से आया हूँ। सब से पहले हाजिरी देनेवाले पंडितजी के अभी तक न आने में कोई खासियत है।' अलीखाँ ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते कहा।

'अरे साहब, तुम भी नहीं आये, पंडितजी के भी न आते देख मैं सोच रहा था कि मैं भी चला जाऊँ। बैठे-बैठे ऊब गया।' अपनी सफेद मूँछों को सँवारते नायुडू बोले।

कोई जरूरी काम में फँस गये होंगे। लेकिन आये विना नहीं रहेंगे, चाहे देरी क्यों न हो जाय।' कहते हुए अलीखाँ ने पंडितजी के आनेवाले रास्ते की ओर नजर दौड़ाई। नायुडू की दृष्टि भी उसी ओर केन्द्रित हुई।

शाम के साढ़े पाँच बजे का समय। समुद्र की ओर से ठंडी हवा चल रही है। 'बीच' (समुद्र-तट) पर बालू में असंख्य जनता बैठी हुई है। आनेवाले लोगों का ताँता लगा हुआ है। कोलतार की सड़क के बाजू में पेवमेंट पर, कतारों में लोगों का प्रवाह उमड़ रहा है। सड़क के दोनों तरफ लोग चल रहे हैं, इसलिए हमें भ्रम नहीं होता। वरना, हमें शक होता कि मद्रास की सारी जनता एक कोने से दूसरे कोने में नहीं पहुँच रही है ?

अपना कोई नहीं ?

विश्वविद्यालय के परीक्षा-भवन के सामने स्थित एक सिमेंट के बेंच पर नायुडू और खाँ साहब बैठे हुए हैं। यह केवल आज की बात नहीं। छह वर्षों से प्रति दिन वे तीनों, उसी क्रम में — नायुडू, पंडितजी, और खाँ साहब वहाँ पर बैठ जाते हैं। पहले वहाँ पर सिमेंट का बेंच नहीं था। एक कटीली झाड़ी थी, उसके नीचे बैठा करते थे। कारपोरेशनवालों ने सिमेंट का बेंच जिस दिन बनाया, बस उसी दिन से वे तीनों आज तक उस पर बैठते आ रहे हैं।

नायुडू का निवास-स्थान वेंकटगिरि है। आबकारी महकमे मे इन्स्पेक्टर की नौकरी करते रिटायर हो गये हैं। रिटायर होने के चार साल पहले ही मद्रास में उनका तबादला हुआ। उनके एक ही पुत्र है। वह किसी कंपनी में नौकरी कर रहा है, इसलिए नायुडू ने हमेशा के लिए मद्रास में ही स्थिर निवास बनाने का निश्चय किया। नौकरी करते समय जो जमा किया और रिटायर के समय संरक्षण-कोष की जो रकम मिली, उस सब को मिलाकर रायपेटा में एक अच्छा मकान खरीद लिया। नौकरी करते समय ईश्वर और भूत की चिंता उन्हें नहीं थी, लेकिन रिटायर होने के बाद ईश्वर के प्रति उनके मन में थोड़ी-सी भक्ति पैदा हो गई। सनलाइट सोप-कंपनीवालों ने अपने कैलेण्डरों में लक्ष्मी और सरस्वती के जो चित्र छापे, उन्हें फ्रेम बँधवाकर दीवाल पर टँगवा दिया और सुबह-शाम उन तस्वीरों के सामने खड़े हो आधे घंटे तक प्रार्थना करना एक नियम-सा बना लिया। शाम के समय ठंडी हवा का सेवन करने के लिए बीच (समुद्र-तट) पर जाने की आदत भी डाल ली। पहले बीच पर एक छोर से दूसरी छोर तक टहलते थे, लेकिन ज्यों-ज्यों उम्र ढलती गई, त्यों-त्यों टहलने की ताकत भी जाती

रहीं। सुस्ती के मारे कहीं एक जगह ढुलक जाते थे। एक दिन उस कँटीली झाड़ी पर पंडितजी के पास ढुलक पड़े। दोनों में दोस्ती हो गई।

× × ×

पंडितजी गोदावरी जिले के थे। बहुत समय तक कलेक्टरेट में काम किया। किस्मत ने साथ दिया, तरक्की मिलती गई। दस साल के भीतर तहसीलदार हुए। इस बीच में सर्विस समाप्त हो गई और रिटायर हो गये। कुछ समय तक अपने गाँव रामचन्द्रपुर में रहे, लेकिन उनकी एकमात्र पुत्री मद्रास में थी इसलिए वे भी वहीं पहुँच गये। दामाद वकील था। अपनी सारी कमाई बेटी को सौंपनी ही थी। उन्हें जो-कुछ पेंशन मिलता है उससे आप पति-पत्नी खाकर दूसरों को भी खिला सकते हैं। ऐसी हालत में दामाद के घर में चाहे जितने भी दिन रहें, कोई आपत्ति नहीं थी। ईर्ष्या करनेवाला भी कोई नहीं। रिटायर होके नये-नये जो मद्रास पहुँचे, उस वक्त कुछ समय के लिए वे दामाद के अतिथि बन कर रहे, लेकिन धीरे-धीरे परिवार के सारे प्रबंध का भार पंडितजी पर आ पड़ा। दामाद की कमाई वैसी खासी नहीं थी, बेटी की किस्मत के कारण दामाद भी धीरे दत्तक पुत्र-सा हो गया। जब से पंडितजी मद्रास आये हैं, रोज बीच पर टहलने जाते हैं। पहले दिन ही उस कँटीली झाड़ी ने पंडितजी को आकृष्ट किया। उसकी छाया में बैठ गये। तब से बराबर वहीं बैठते रहे। नगर-निगमवालों ने जब सिमेंट का बेंच बनवाने के लिए उस झाड़ी को काट डाला, तब पंडितजी को बड़ा खेद हुआ।

× × ×

अलीखाँ की पैदाइश मद्रास में हुई। वहीं बड़े हुए। पुलिस महकमे में नौकरी लगी। लगन के साथ अपनी ड्यूटी करते रहने और उन दिनों पुलिस महकमे में अँगरेजी पढ़े-लिखे लोगों के कम रहने के कारण जल्दी वे सर्किल-इन्स्पेक्टर बन गये। फिर डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट हुए। बहुत समय तक आन्ध्र में काम करते रहने के कारण तेलुगु भी खूब सीख गये थे। उनकी पत्नी आन्ध्र देश के चित्तूर जिले की थी। इसलिए खाँ साहब उर्दू को छोड़ कभी अगर किसी भाषा में बोलते, तो वह तेलुगु में ही। अलीखाँ के चार बेटे हैं और चारो सरकारी नौकरियों में हैं। बड़ा बेटा मद्रास में ही पोष्टमाष्टर है। इसलिए अलीखाँ ने भी अपनी जन्मभूमि मद्रास में ही अपना निवास बना लिया।

एक दिन अलीखाँ अपने खानदान की औरतों को बीच पर ले आये। नायुडू और पंडितजी जहाँ पर बैठे थे, वहीं औरतें पर्दों से बँधे रिक्शों पर से उतरीं और समुद्र के किनारे की ओर चल दीं। खाँ साहब इधर-उधर थोड़ी देर तक टहलते रहे, फिर औरतों के साथ समुद्र के किनारे तक पहुँचने की जब इच्छा नहीं हुई, तब पंडितजी के पास आकर उनकी बगल में बैठ गये। नायुडू और पंडितजी में वार्त्तालाप चल रहा था, खाँ साहब भी बीच-बीच में अपनी राय बताते रहे। औरतों के लौटने तक वे तीनों एक दूसरे से भली भाँति परिचित हो गये। उसके दूसरे दिन से प्रतिदिन बीच पर जाना अलीखाँ ने भी नियम-सा बना लिया।

वे तीनों नौकरियों से अवकाश लिये हुए हैं और एक-दो साल के अन्तर से करीब-करीब तीनों साठ साल के निकट पहुँच चुके हैं। न मालूम क्यों तीनों के विचार और हृदय मिल गये हैं। प्रति-दिन तीनों बीच पर आते हैं और वहीं बैठते हैं। अपने दिल खोलकर बात करते हैं,

तीनों तीन महकमों के अनुभवी हैं। अपने अनुभव परस्पर सुनाते हैं। जब लोगों के दिल मिलते हैं और आपस में स्वार्थ का संबंध नहीं होता है, तब लोग अपने सुख-दुःख दिल खोलकर एक दूसरे को सुनाते हैं। ऐसे लोगों के बीच परस्पर आत्मीय भाव पैदा होता है। इन तीनों में भी उसी प्रकार निष्कलंक आत्मीयता पैदा हो गई।

प्रति-दिन बीच पर टहलने के लिए आनेवालों का ध्यान इन तीनों की तरफ अवश्य गया था। कुछ लोगों ने मन में सोचा भी कि प्रति-दिन वहीं पर त्रिमूर्त्तियों की भाँति बैठनेवाले ये तीनों कौन हैं? कुछ लोग मन ही-मन में बुदबुदाये भी कि हमेशा ये लोग बेंच पर हमें बैठने का अवकाश नहीं देते हैं।

लेकिन इस त्रितय मित्रवरों ने दूसरों के विचारों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया, उनकी दुनियाँ अलग थी। दिन-भर चाहे ये लोग किसी भी तरह के काम में क्यों न लगे रहते हों लेकिन शाम के समय बीच पर तीनों के मिलते ही वे दुनियाँ को भी भूल जाते थे। उनके विचार ही भिन्न थे। परस्पर उन लोगों ने लाभ की आशा नहीं की। उनका एक विशेष प्रकार का संयुक्त अकेलापन है। सब अपने एकाकीपन को भूल जाते थे।

आज पंडितजी के न आने से, नायुडू और खाँ साहब को भी कुछ नहीं सूझा। उन दोनों के बीच में पंडितजी के बैठने का स्थान खाली पड़ा है। रोज इन तीनो को देखते पेवमेंट पर चलनेवालों का ध्यान दोनों के बीच की खाली जगह की ओर अवश्य गया।

अंधेरा होने को है। अभी तक पंडितजी नहीं आये। 'क्यों भाई, क्या वजह हो सकती है?' अलीखाँ ने नायुडू से सवाल किया, लेकिन बेचारे नायुडू भी क्या जवाब दे सकते हैं?

'शायद कोई बीमारी हो गई होगी।' कहना चाहा, लेकिन ऐसी अमंगल की बात प्रकट करने को उनका दिल नहीं माना। केवल यह कहकर चुप रह गये —'कुछ विचित्र ही मालूम होता है, जनाब !'

इस बीच चार लड़के उस प्रदेश के समीप आये। वे नटखट तो थे ही। उन्हें इस बात का खयाल नहीं रहता कि मुँह में जो आया, बक देने से सामने के व्यक्तियों का दिल दुखता है। जब जो मुँह में आया, बस विना झिझक के कह डालते हैं। वे लड़के प्रति-दिन उन तीनों मित्रों को देख रहे हैं। लेकिन तीनों को एक साथ देख कुछ कह नहीं पाते थे। आज उनमें से एक व्यक्ति को न देख शायद उनका साहस बढ़ गया।

एक ने कहा —'बीच में बैठनेवाला बूढ़ा आज नहीं आया।'

दूसरे ने कहा —'अरे, बहुत दिन जिया, अब कितने दिन जीयेगा ? शायद मर गया होगा।'

कलेज की पढ़ाई को इस तरह बुजुर्गों के अपमान करने में लगाते उन लड़कों पर वे दोनों जोर से हँस पड़े। लड़के वहाँ से चल दिये, मानों उन्होंने बहुत बड़ा कर्त्तव्य पूरा किया हो।

फिर भी, लड़कों की बातें नायुडू और खाँ साहब के कानों में लगीं। उनके मन व्याकुल हुए। उनके कलेजे तो धड़कने लगे।

उनकी अवस्था तथा मृत्यु और उनके बीच का अतिनिकट सम्बन्ध आज की पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच का अन्तर और इन सबसे बढ़कर उनका एकाकीपन तुरन्त उनके हृदयों को विकल बनाने लगे।

दीनता के साथ दोनों ने एक दूसरे के मुँह को देखा। अपने भयंकर एकाकीपन को भूलने के विचार से दोनों एक दूसरे के निकट सरककर बैठ गये, हठात् पंडितजी का स्मरण ताजा हो उठा। पंडितजी की जगह

को बनाये रखने का विचार उनकी अन्तरात्मा में पैदा हुआ। पुनः दोनों अपने पूर्व स्थानों पर जा बैठे।

अंधेरा हो चला था, पर पंडितजी नहीं आये। अब वे दोनों वहाँ पर बैठ नहीं सके। उनके मन गरम हो उठे और उनका हृदय भारी मालूम होने लगा।

'गुड नाइट' के बाद दोनों अपने-अपने रास्ते चले गये।

नायुडू और खाँ साहब को रात्रि में नींद नहीं आई। उनके मन किसी अज्ञात आशंका से व्याकुल थे। उनके बुढ़ापे के भारी बोझ ने उन्हें एक साथ दबा दिया। आज तक उनसे कोसों दूर एवं अविस्मृत मृत्यु आज उनकी आँखों के सामने नृत्य करने लगी। साठ वर्ष की उम्र तक जीवित रहनेवाले इस देश में बहुत कम लोग हैं न। शायद उनकी मृत्यु के दिन भी निकट आ गये होंगे। पंडितजी के बीच पर न आने का कारण कोई बीमारी ही हो सकती है। इतनी बड़ी उम्र में बीमार होना और बीमार होने पर जीना नामुमकिन है। उनकी हालत भी तो यही होगी। उस दिन की रात्रि को मृत्यु-विचार को छोड़ दूसरा कोई विचार उनके मन में नहीं आया।

दूसरे दिन सुबह नायुडू और खाँ साहब चारपाइयों पर से उठे नहीं। उनके बेटों ने जाकर डॉक्टरों को बुलाया। डॉक्टरों ने थर्मामीटरों से शरीर के ताप को नापा, लेकिन उन वृद्धों के मन की उद्विग्नता का, सैकड़े में एक प्रतिशत भी, अंदाज नहीं लगा पाये। दवा भेजी। शाम को बीच पर जाने का समय हो गया। नायुडू या खाँ साहब दोनों बीच पर नहीं जा सके। इससे उनके मन और घबरा उठे। बुखार और तेज हो गया।

पंडितजी उस दिन बीच पर गये। बीच पर जाते वक्त मन में सोचा कि पिछले दिन दामाद और पुत्री के अनुरोध पर सिनेमा

गया था, इसके लिए अपने मित्रों से माफी माँग लूँगा, लेकिन उनके मित्र नहीं आये। अकेले बड़ी देर तक बैठे मित्रों की बाट जोहते रहे। लेकिन वे दोनों नहीं ही आये।

नटखट लड़कों ने आज अकेले पंडितजी को देखा।

'अरे कल हमने सोचा था कि ये मर गये हैं, पर आज ऐसा लगता है कि वे दोनों भी मर गये हैं।' चिल्लाते-हँसते लड़के वहाँ से चल दिये। पंडितजी का मन घबरा उठा। क्या हम तीनों अब मरनेवालों की सूची में हैं ? तीनों के मर जाने से दुनिया यही सोचेगी कि मृत्यु मानव के लिए तो सहज है, यह प्रकृति का नियम है, जो चीज या प्राणी पृथ्वी पर जन्म लेता है, वह मृत्यु को भी प्राप्त होता है। यदि वे इस अवस्था को प्राप्त नहीं होते हैं तो इसका मतलब यह होगा कि प्रकृति के विरुद्ध कोई जबरदस्त ताकत है। एकांत में मृत्यु का एकाकीपन पंडितजी के दिल को झकझोरने लगा और वे वहाँ पर बैठ नहीं सके। घर तक पैदल चलने की हिम्मत नहीं हुई। रिक्शे पर चल दिये।

तीसरे दिन विश्वविद्यालय के परीक्षा-भवन के सामने का बेंच खाली पड़ा था। उस पर कोई बैठा न था। चारों नटखट लड़के रोज की भाँति उस बेंच की तरफ से गुजरे। उस पर बैठना चाहा, फिर यह सोचकर अपने-अपने रास्ते चले गये कि शायद वे बूढ़े आ जायँ।

उस दिन वे तीनों बूढ़े नहीं आये। लड़कों की हिम्मत बढ़ गई। उस बेंच पर बैठने का लोभ सँवार न सके। तीनों बूढ़ों के स्थान को चार युवकों ने अपना लिया। मानों उन बूढ़ों का स्थान युवको का ही हो, बेंच चारों युवकों के बैठने योग्य था।

युवकों को बूढ़ों की चिन्ता अनावश्यक है, इसलिए उन लोगों ने बूढ़ों के बारे में सोचा तक नहीं। उस दिन की शाम को ट्रिप्लिकेन में, मुसलमानों के श्मशान में, एक समाधि और बढ़ गई।

ट्रिप्लिकेन के हिन्दुओं के श्मशान में दो लाशें और पहुँचीं। एक नायुडू की और एक पंडितजी की। इन दोनों हिन्दू-मित्रों की अन्तिम समय में भी समीपता नहीं रही; क्योंकि जात-पाँत के भेदभाव बीच की दीवार बने थे। ब्राह्मणों के जलाने का घाट अलग और ब्राह्मणेतरों का अलग।

लेकिन इन दोनों शवों के धुएँ एक दूसरे से मिले बिना नहीं रहे। हवा के बहाव में, मुसलमानों के श्मशान की ओर भी यह धुआँ फैल गया। शायद खाँ साहब की समाधि की ओर फैलकर धुआँ ने उनके कान में यह बताया होगा—

'मरकर भी हम अलग नहीं हैं।'

●

सौन्दर्य और सन्ताप

आँखों को चौंधियानेवाले आलोक से हृदयों को उत्फुल्ल बनानेवाला है मनोहर एवं सजीव शिल्प-कला-निलय रामप्प मंदिर। उस देवालय का शिल्प दर्शकों का नेत्रपर्व है, साथ ही काकतीय नरेशों की कलाभि-रुचि तथा आन्ध्र-शिल्पियों के सुकुमार हस्तकौशल का सुन्दर नमूना भी। और, कठिन शिलाओं पर रूप-कल्पना करनेवाली छेनी अपनी गति का परिचय देकर दर्शकों को अपनी ओर आकृष्ट कर रही है।...सामने महापर्वत की भाँति खड़ा देवालय.. वही रामप्प मंदिर है।

लंबा पैंट, पैंट में कसी कमीज, उस पर काला कोट, सर पर हैट, ये सब मिलकर एक विचित्र स्वरूप ...... सफेद एवं मुरझाया हुआ मुखमंडल.. बगल में थैली . यही मार्कोपोलो हैं। मार्कोपोलो ने सामने स्थित उस मंदिर को देख एक विचित्र अनुभूति प्राप्त की। वह भ्रम में तो नहीं पड़े हैं। आँखें मल-मलकर देखा, और देखते ही रहे। सहसा उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। अपने शरीर को चिकोटी काटकर सावधानी से देखा, वे अपने सामने देखते क्या हैं? विश्वास नहीं हुआ। क्या यह असत्य है? उनकी आँखें धोखा तो नहीं दे रही हैं? अप्रयत्न ही उनके मुँह से निकल पड़ा--

'यह मानव-निर्मित कला-कृति है?'

मार्कोपोलो के पार्श्व में खड़े होकर शिल्प के सजीव सौन्दर्य का आनन्द उठानेवाला एक पथिक यह प्रश्न सुनकर हठात् चौंक पड़ा।

परदेशी की ओर विस्मय के साथ देखा।

'इस मंदिर को तो मानव के हाथों ने निर्मित किया है। देवालय पर अंकित शिल्प इसका प्रमाण दे रहा है और यह क्यों पूछता है, यह मानव-निर्मित है? ...मानव ने यदि इसका निर्माण नहीं किया, तो क्या स्वयं देवताओं ने पृथ्वी पर उतरकर निर्माण किया है?' उसके मुखमंडल पर मंद हास की रेखाएँ फूटीं।

'हे परदेशी। इस आलय को मानव ने ही बनाया है। चकित होकर क्या देखते हो? तुमने क्या कहीं ऐसा शिल्प नहीं देखा?' अपने मंद हास पर नियन्त्रण करते पथिक ने कहा।

'ऐसा अपूर्व शिल्प मैंने कहीं नहीं देखा, इसलिए तो मुझे विस्मय हो रहा है। सचमुच यह महोन्नत शिल्प है। मैंने अनेक देशों का भ्रमण किया है। असंख्य शिल्प देखे हैं। लेकिन वे सब इसके सामने तुच्छ हैं। यह तो लोकोत्तर सौन्दर्य की कला-विभूति है। हृदयों में उल्लास भरनेवाला महत्तर शिल्प है। निर्जीव पाषाण में किसी शिल्पी ने प्राण-प्रतिष्ठा की है। भाई, यह महान् शिल्प-सम्राट् कौन हैं? अपने इन नेत्रों से उनके दर्शन कर धन्य हो जाऊँगा।' विनयपूर्वक मार्कोपोलो ने प्रश्न किया।

'तुम उनको देख नहीं सकते।'

पथिक ने कुछ अन्यमनस्क हो उत्तर दिया।

'क्यों?......उनके नाम का ही सही, परिचय दो। सुनकर प्रसन्न हो जाऊँगा।'

'गजराज नामक शिल्पी ने।'

'गजराज?......याने उसका अर्थ?'

'गज के माने हाथी, राजा के माने सम्राट्। गजराज का अर्थ हुआ, हाथियों का सम्राट्।'

गजराज क्या है ? उनके लिए शिल्पराज नामकरण अच्छा होगा। तो वे ’

‘वे इस पार्थिव जगत् में नहीं हैं। हम जिस मिट्टी पर खड़े हैं, उसीमें वे मिल गये हैं। वह सब एक बड़ी रामकहानी है।’ पथिक ने व्यथित होकर गहरी साँस ली।

मार्कोपोलो के मन में बवंडर की भाँति कुतूहल जाग उठा। ‘क्या उस कहानी को मैं सुन नहीं सकता हूँ ?’ विनीत होकर प्रश्न किया।

‘वह बार-बार पूछ रहे हैं. सारी कहानी सुनाते क्यों नहीं। वह कौन हैं, जानते हो ? इटली के निवासी हैं। यात्री हैं। सभी देशों क भ्रमण किया करते हैं। यदि इस मंदिर की कहानी उन्हें सुनाओगे, तो वे जहाँ भी जायेंगे, उन सब प्रदेशों में इसकी महत्ता का परिचय देकर इस मंदिर की कीर्ति को चतुर्दिक् फैला देंगे।’—पथिक की अंतरात्मा ने प्रबोध किया।

पथिक ने सामने स्थित उस मंदिर की ओर तथा पार्श्व में खड़े उस पाश्चात्य यात्री की ओर एक बार उल्लास-भरी दृष्टि दौड़ाई और अपने स्वर को ठीक करके कहना प्रारंभ किया—‘तो सुनिए। आप इस शिल्प की महिमा को देख जैसे उल्लास के मारे उछल रहे हैं, वैसे ही उसकी विषाद-गाथा को सुनने पर विलाप कर उठेंगे।’

पथिक ने कहानी शुरू की—

आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं कि जहाँ पर हम खड़े हैं यह प्रदेश पालमपेट कहलाता है और यह भू-भाग आन्ध्र साम्राज्य में है। पीछे मुड़कर सीधे चालीस मील चलने पर आन्ध्र-साम्राज्य की राजधानी ओरुगल्लु वरंगल पहुँच सकते हैं। इस समय आन्ध्र-भू-भाग पर शासन करनेवाली महारानी रुद्रम् देवी के स्वर्गीय पिता काकतीय गणपतिदेव ही इस मंदिरके मुख्य निर्माता हैं। उनको धर्मराज कविता-कलाविशारद और सौन्दर्योपासक भी कहा जाय, तो कोई

आश्चर्य की बात न होगी। उनके द्वारा पुरस्कृत न हुए कलाकार ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगे।

गणपतिदेव का विचार था कि इस मंदिर को एक सुन्दर कला-भवन का स्वरूप प्रदान करावें तथा विश्व-शिल्पकला माता के चरणों में समर्पित करें। अपने इस स्वप्न को साकार बना सकनेवाले शिल्पी को सम्राट् ने समस्त आन्ध्र-साम्राज्य में सहस्र नेत्रों-से खोज की। सौभाग्यवश आन्ध्र-प्रदेश के गजराज नामक किशोर शिल्पी से सम्राट् का परिचय हुआ। किशोर शिल्पी में मय शिल्पकार को भी मात करनेवाली कला-प्रतिभा का महाराज ने दर्शन किया और उसे उक्त मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा करने को नियुक्त किया।

सम्राट् ने गजराज (के मस्तक) पर जो महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व का भार सौंपा, उसे उसने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। मन्दिर को शोभायमान बनाकर उसके औन्नत्य तथा यश को चतुर्दिक् व्याप्त कराने के कार्य में प्रवृत्त हुआ। गजराज की छेनी ने प्रथम मंदिर के सामने महानंदी की अपूर्व सृष्टि की। नन्दी के निर्माण से किशोर शिल्पी की ख्याति दिग्दिगन्त मे फैल गई। देखो, वह महानंदी······उत्तुङ्ग पर्वत की भाँति दिखाई दे रहा है।

शिल्पी तथा उसकी कृति को देखने तीर्थ-यात्रियों की भाँति जनता का प्रवाह उमड़ने लगा। राजकुमारी रुद्रम् देवी भी एक दिन उस अपूर्व सृष्टि को देखने चली। मिट्टी से सुन्दर आकृतियों की सृष्टि करनेवाले गजराज को देखा। उसकी कला-प्रतिभा पर मुग्ध हो गई। गजराज ने भी राजकुमारी की ओर आँख उठाकर देखा। प्रथम दृष्टि में हो, उस विश्व-विख्यात सुन्दरी को अपने हृदय में बिठा लिया। संपूर्ण हृदय से प्रेम किया। उसे मालूम नहीं था कि वह सुन्दरी राजकुमारी है। रुद्रमा संक्षेप में वार्त्तालाप समाप्त कर मन-ही-मन उस कलाकार के शिल्प-कौशल की प्रशंसा करती वहाँ से चली गई। गजराज में पूर्ण आशा

एवं विश्वास पैदा हो गया कि वह जगदेकसुन्दरी, जो उसके हृदय में प्रेम की ज्योति जलाकर चली गई, पुनः लौट आयगी। इसी आशा से गजराज ने उस सुन्दरी को अपनी आराध्य देवी मानकर शिल्प-रचना का उपक्रम किया। इस नई प्रेरणा से उसके हाथ की छेनी मंदिर की भित्तियों पर नई शैलियों में मूर्त्तियाँ गढ़ती गईं।

शक्तिशाली काल-गर्भ में कुछ वर्ष विलीन हो गये। कला-प्रेमी सम्राट् गणपतिदेव स्वर्गवासी हुए। उनके कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उनकी एकमात्र पुत्री रुद्रमा, जो उस समय शासन-सूत्र सँभाल रही थी, सिंहासन पर बैठी। देश-द्रोहियों को एक नारी का सिंहासन पर बैठना अच्छा न लगा। राज्य में अन्तःकलह प्रारंभ हुआ। नारी के समक्ष सर झुकाने को सामंत भी तैयार न थे। उन लोगों ने अपने को स्वतंत्र घोषित किया। चारों तरफ राज्य के भीतर विद्रोह की आग सुलगने लगी। एक अबला को शासन-सूत्र सँभालते देख मानों उसका परिहास करने के विचार से शत्रुओं ने युद्ध करने और उस राज्य को हड़पने की ठानी। राज्य-भर में उपराजाओं की अराजकता और विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित हो गई।

रुद्रमा ने यह साबित किया कि औरत अबला नहीं, अपितु सिंहिनी है। अंतःकलह को तत्काल दबा दिया। स्वतंत्र हुए सामंतों के घमण्ड को चकनाचूर किया। शत्रुओं को रणभूमि में पराजित कर अपने राज्य का विस्तार किया तथा काकतीय वंश के इतिहास में एक नये अध्याय का श्रीगणेश भी।

राज्य में शान्ति स्थापित करने के महत्त्वपूर्ण कार्य में निमग्न रुद्रमा देवी रामप्प मन्दिर तथा शिल्पी को भूल गई। परन्तु गजराज इस आशा से, अपने स्वास्थ्य की भी परवाह किये विना महाराज ने जो उत्तरदायित्व सौंपा था, उसकी पूर्त्ति में निमग्न रहा कि एक-न-एक दिन उसकी आराध्य देवी अवश्य लौट आयगी।
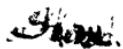
राज्य-भर में शान्ति का साम्राज्य फैला था। एक दिन महामंत्री ज्ञानमित्र के स्मरण दिलाने पर रुद्रमा ने पालमपेट के लिए प्रस्थान किया शिल्पी को देखने। गजराज ने उस सुन्दरी को देखा। अपने मन की व्यथा को प्रकट किया। वह नहीं जानता था कि उसके सामने जो सुन्दरी खड़ी है, वह महारानी है। उस शिल्पी की व्यथा का अनुभव कर रुद्रमा का हृदय दु:ख से भर गया। उसने शिल्पी से क्षमा-याचना की, गुरुतर उत्तरदायित्व के कारण उसे क्षण-भर का भी अवकाश नहीं मिला, इस कारण भूल गई।

परिपूर्ण हृदय से प्रेम करनेवाले उस शिल्पी को संतुष्ट करने के लिए रुद्रमा दो-तीन बार पालमपेट गई। वहाँ पर शिल्पी की उँगलियों के बीच दबनेवाली मिट्टी और उस मिट्टी से रूप-कल्पना पाकर उपस्थित होनेवाली मूर्त्तियों के नमूने तथा उन नमूनों को देखते हुए मंदिर के कुड्यों (भित्तियों) पर विचित्र भंगियों में नृत्य करनेवाली छेनी—इन सब ने मिलकर उस शिल्पी के प्रति रुद्रमा के हृदय में सहानुभूति और प्रेम पैदा किया। रुद्रमा के हृदय ने अपने आप को शिल्पी को समर्पित किया। इस बात को रुद्रमा ने बड़े विलंब के बाद समझा। इस प्रणय के कारण ही महारानी ने चारपाई पकड़ी। उन्मादावस्था में रुद्रमा के मुँह से प्रणय-प्रलाप के वचन सुनकर प्रधानामात्य ज्ञानमित्र ने सारी स्थिति को जान लिया और गजराज को लिवा लाने दूत भेजा। दूत द्वारा यह जानकर शिल्पी आश्चर्यचकित हुआ कि इतने दिनों से वह जिस सुन्दरी से प्रेम करता आया है, वह महारानी है। साथ-ही अपने पितृतुल्य गणपतिदेव की मृत्यु का समाचार बहुत समय बाद सुनकर विलाप कर उठा। महामात्य के आदेश का तिरस्कार न कर सकने की स्थिति में गजराज राजधानी पहुँचा।

ओरुगल्लु के राजप्रसाद में महामंत्री ने संतोष और आदरपूर्वक शिल्पी का स्वागत किया। महारानी के अस्वस्थ होने का समाचार सुनाकर उनके शयन-मंदिर का मार्ग दिखाया। गजराज को देखते ही रुद्रमा कुछ स्वस्थ हुई। कातर नेत्रों से शिल्पी के मुख-मण्डल को देखती रुद्रमा ने रुद्ध कण्ठ से कहा—मैं इस विशाल साम्राज्य की महारानी अवश्य हूँ, किन्तु साथ-ही-साथ तुम्हारे हृदय की भी रानी हूँ। प्रधानामात्य मेरी इच्छा का विरोध नहीं करेंगे। बहुत जल्द उनकी भी अनुमति प्राप्त कर अपने विवाह का समस्त प्रबंध कराऊँगी। इस बीच में आलय का जो कार्य शेष रह गया है, उसे भी समाप्त कर पिताजी की आत्मा को शांति प्रदान करें। तदुपरांत महारानी ने शिल्पी को पालमपेट वापस भेज दिया।

× × ×

शिल्पी भारी हृदय लेकर पालमपेट तो पहुँचा, परन्तु उसके सामने बड़ी विकट समस्या उपस्थित हुई और यह उसके हृदय को विकल बनाने लगी। वह तो······एक साधारण शिल्पी है······पर रुद्रमा·· आन्ध्र-महाराज्य की वैभवमयी महारानी। दोनों में साम्य ही कहाँ? वह नंदनविहारिणी, मैं एक श्रमिक मजदूर शिल्पी। आकाश-पाताल का अन्तर है। क्या हम दोनों के बीच प्रेम संबंध कभी उचित हो सकता है?······संभव भी हो, लेकिन लोग क्या सोचेंगे? ··· जनमत के अनुसार जनहित के लिए शासन करनेवाली महारानी उसके साथ विवाह करेंगी, तो महारानी के चरित्र में जो अमिट कलंक लग सकता है, उसकी कल्पना कर शिल्पी विचलित हो उठा। भावी इतिहास में महारानी का क्या स्थान होगा, शिल्पी ने अंदाज लगाया। इसलिए महारानी के सुख और यश के मार्ग में त्याग करने का ही शिल्पी ने निश्चय किया। और, यह भी सोचा कि पितृतुल्य गणपतिदेव

की आत्म-शांति के लिए आलय के अवशेष कार्य को पूर्ण कर, पालमपेट को छोड़ दूर देशों में चला जाना चाहिए।

इस विचार से निद्राहार की परवाह किये विना दिन-रात अथक परिश्रम करके मदिर को सर्वश्रेष्ठ कला-निलय का रूप प्रदान किया, किन्तु उसका स्वास्थ्य गिर गया।

कार्य के समाप्त होते ही आलय की एक बार, यह देखने के लिए, प्रदक्षिणा की, कि वह सम्राट् की इच्छा के अनुरूप लोकोत्तर सुन्दर शिल्प-कला-निलय बना सका या नहीं। अपने शिल्प की निपुणता को देख शिल्पी स्वयं आनंदविभोर हो गया। आलय के शिखर पर खड़े होकर उस भ्रम से कि मानों गणपतिदेव उसे बुला रहे हैं, खून उगलता नीचे गिर पड़ा।

ठीक उसी समय गजराज को ओरुगल्लु ले जाने के लिए महारानी रुद्रमा सदल-बल वहाँ आ पहुँचीं। लेकिन रक्त में सने शिल्पी को देख रुद्रमा का हृदय विदीर्ण हो गया और अविरल अश्रु-धारा बहाती फूट-फूटकर रोने लगीं। उन्हें अपने पद और समाज की परवाह नहीं थी। रुद्रमा शिल्पी के मूर्च्छित कलेवर के निकट धम्म से गिर पड़ीं और शिल्पी के सिर को अपनी गोद में ले लिया।

गजराज ने शीतल स्पर्श का सुख पा नेत्र खोलकर देखा। अपनी प्रेयसी को अपने निकट देख उसकी आँखें तेज से दमकने लगीं -- 'हेमेरे राजा, तुम्हें ले जाने के लिए आई हूँ। महामंत्री ने अनुज्ञा दी है। जनता ने भी अपनी अनुमति दी।' रुद्रमा ने शिल्पी के कानों में संगीत की-सी ध्वनि में शब्दों का संचार किया।

गजराज ने मंद हास किया। अपनी तर्जनी से आलय के शिखर की ओर संकेत करते सदा के लिए आँखें मूँद लीं।

पथिक का कंठ अवरुद्ध हो उ[illegible]र्कोपोलो के नेत्र सजल हो उठे।

× × ×

राज-दरबार मंत्री, सामंत सेनापति, पंडित और प्रजा प्रतिनिधियों से सुशोभायमान है। सिंहासन पर राजसी आटोप का परिचय देते हुए रुद्रमा इस प्रकार दिखाई देती है, मानों विद्याओं की रानी सरस्वती, वरदान देनेवाली माता लक्ष्मी, अनुराग की देवी पार्वती तीनों एक साथ इस धरती पर रुद्रमा के रूप में अवतरित हुई हों। दूत ने प्रवेश कर निवेदन किया कि महारानी के दर्शनों के लिए कोई परदेशी आया है। महामंत्री ने तत्क्षण उस परदेशी को राज-सभा में उपस्थित करने की आज्ञा दी।

मंद गति से चलते मस्तक उठाये नेत्रों से दरबार की शोभा का आस्वादन करते मार्कोपोलो ने सभा-भवन में प्रवेश किया। सिंहासन पर अधिष्ठित दिव्य सुन्दरी को देख कुछ क्षण तक चकित रह गये। लेकिन फिर सँभलकर झुककर महारानी को मार्कोपोलो ने नमस्कार किया। उनके मन में रामप्प मंदिर के प्राचीरों पर अंकित शिल्प दमक उठा। उसमें रुद्रम् देवी उन्हें प्रत्यक्ष हुईं।

'सर्वशक्तिमान् परमात्मा महारानी का कल्याण करें। मेरा नाम मार्कोपोलो है······मैं इटली का निवासी हूँ।' मार्कोपोलो ने सविनय अपना परिचय दिया।

'आन्ध्र-महासाम्राज्य की तरफ से तथा आन्ध्र-प्रजा की ओर से हम आपका स्वागत करते हैं।' रुद्रम् देवी ने परदेशी को उचित आसन पर बैठने का संकेत किया।

'आप के देश के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था। अपने नेत्रों से स्वयं उसके दर्शन करने के लिए आया। देखा, समझा। सचमुच मैं धन्य हो गया महारानी जी!'···मार्कोपोलो गद्गद हो उठे।

'हमें अत्यंत आनंद हुआ।' परदेशी की प्रशंसा स्वीकार करती रुद्रमा ने हृदयपूर्वक संक्षेप में उत्तर दिया।

'आप विश्वास रखें कि आपके रामप्प मंदिर ने मेरे हृदय में अपना आसन बना लिया है। आँखें सहसा जिस पर विश्वास नहीं कर सकतीं, मन जिसकी कल्पना नहीं कर सकता, ऐसे महोत्तम एवं अपूर्व शिल्पालय को देखा। कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आन्ध्र-शिल्प की समता रखनेवाली यह वस्तु अन्यत्र दुर्लभ है।'

रुद्रमा के नेत्र अश्रुपूरित हुए। उनकी मनोवीथी में रामप्प मंदिर नृत्य कर उठा। गजराज की मूर्त्ति उनके नयनों के समक्ष प्रत्यक्ष हुई। उनका हृदय आवेदना से कलप उठा। महारानी ने माहामात्य को मार्कोपोलो का उचित रीति से सत्कार करने का आदेश दिया और आप अन्तःपुर की ओर चल पड़ीं।

× × ×

आन्ध्र-प्रदेश में वरंगल (उस समय का ओरुगल्लु) से चालीस मील की दूरी पर रामप्प मंदिर है।

रामप्प मंदिर एक सुविख्यात देवालय है। काकतीयांध्र-संस्कृति, काकतीयों की कलाभिरुचि तथा उस समय के आन्ध्र शिल्पकला-कौशल का प्रत्यक्ष प्रमाण रामप्प मंदिर है। परिपूर्ण प्रेम से आहत हृदय ने जो अश्रु-वृष्टि की उस का प्रत्येक वाष्पकण रामप्प मदिर की शिल्प-कला का प्राण है।

आवेदना से पीड़ित एवं व्यथित दो हृदयों की विषाद-गाथा रामप्प मंदिर की कहानी है।

लेकिन···वे दोनों आज पार्थिव रूप में नहीं हैं, उनमें एक तो नाम-रूप-विहीन होकर उस आलय के प्रांगण में पंचत्व प्राप्त कर गया और दूसरे ने इतिहास में प्रसिद्ध हो कर शाश्वती प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है।